धर्म क्या कहता है ? . ५

जैन धर्म क्या कहता है ?

श्रीकृष्णदत्त भट्ट

सर्व - सेवा - संघ - प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी

प्रकाशक : मन्त्री, सर्व-सेवा-सघ, राजघाट, वाराणसी-१
सस्करण : प्रथम : दिसम्बर, १९६३ : ३,०००
द्वितीय : नवम्बर, १९६४ : ५,०००
कुल प्रतियाँ : ८,०००
मुद्रक : बलदेवदास,
संसार प्रेस, काशीपुरा, वाराणसी
मूल्य : ६० पैसे

Title : JAIN DHARMA
KYA KAHATA HAI ?
Author : Shrikrishna Datta Bhatta
Subject : Religion
Publisher : Secretary,
Sarva Seva Sangh,
Rajghat, Varanasi-1
Edition : Second
Copies : 5,000, November, '64
Price : 60 Paise

प्र का श की य

किसी भी त्रस या स्थावर प्राणीको न सताओ—यह है भगवान् महावीरका सन्देश।

जैन धर्ममे अहिंसापर सबसे अधिक जोर दिया गया है। तीर्थंकरोने कहा है कि जीवनके हर क्षेत्रमे अहिंसाका पालन होना चाहिए।

जैन आचार्योंने अहिंसाके पालनके सूक्ष्मसे सूक्ष्म नियम बताये हैं। सबका उद्देश्य एक ही है कि प्राणीमात्रके प्रति प्रेम और करुणाका व्यवहार किया जाय और सत्यमय जीवन बिताया जाय।

हमारी 'धर्म क्या कहता है ?' पुस्तक-मालाकी यह पॉचवी पुस्तक है—'जैन धर्म क्या कहता है ?'। इसके पहले वैदिक धर्मपर ३ पुस्तकें निकल चुकी हैं। बौद्ध, पारसी, यहूदी, ताओ, कनफ्यूश, ईसाई, इस्लाम, सिख तथा मानव धर्मपर भी ४ पुस्तकें और निकल रही है। सभीके मूलमे एक ही भावना है—सत्य, प्रेम और करुणा।

हम मानते हैं कि हमारी इस पुस्तक-मालाका सर्वत्र स्वागत होगा।

●

अनुक्रम

१. भगवान् महावीर ५—९

जन्म ५, बचपन ६, विवाह ६, वैराग्य ७, तपस्या ७, उपदेश ८, सघकी स्थापना ८, निर्वाण ८ ।

२. जैन धर्म १०—२३

'जैन' शब्द १०, तीर्थंकर ११, जैन धर्म १२, जैन-श्रुत १३, पुराण १४, दिगम्बर साहित्य १४, आचार्य १५, जैन-दर्शन १५, अनेकान्त १५, अहिंसा १७, तपस्या १९, सदाचार १९, कर्म-सिद्धान्त २३, आत्माको जीतो २३ ।

३. महावीरने कहा है २४—५९

१. धर्मका आचरण करो २४, २. आठ प्रकारके कर्म २६, ३. कर्मोंका फल पाना होगा २८, ४. आत्मासे आत्माको जीतो २९, ५. कषायोको छोडो ३०, ६. किसीकी हिंसा मत करो ३५, ७. हितकारी सत्य बोलो ४०, ८. चोरी तिनकेकी भी नहीं ४३, ९. ब्रह्मचर्यकी तपस्या ४५, १०. परिग्रहका त्याग करो ५१, ११. प्रमाद मत करो ५५, १२. सच्चा ब्राह्मण : साधु और भिक्षु ५६, १३. सबको क्षमा ५९ ।

४. तत्त्वार्थसूत्रमे कहा है ६०—६६

१. धर्म क्या है ? ६१, २. मोक्षके साधन ६२, ३. पञ्च महाव्रत ६३, ४. दान-धर्मके चार अग ६६ ।

५. आचार्योंने कहा है ६७—७७

१ वही आत्मा : वही परमात्मा ६७, २. मुक्त कौन होता है ? ६८, ३. शील ही मुक्तिका साधन ६९, ४. श्रावकका आचार ७०, ५. भावको शुद्ध करो ७३, ६. क्रोध जलाकर जलता है ७४, ७ ममताका त्याग करो ७५, ८. दान देना आवश्यक ७५, ९. सबसे मेरी मैत्री हो ७७ ।

६. पुराणमे कहा है ७८—८०

१. दया धर्मका मूल है ७८, २. हरी घासमें भी जीव है ७९ ।

: १ :

मित्ती मे सव्व भूएसु ।

'सब प्राणियोसे मेरी मैत्री है ।'—यह था भगवान् महावीरका आदर्श ।

अहिंसाके मूर्तिमान् प्रतीक थे वे ।

त्याग और तपस्यासे ओतप्रोत था उनका जीवन ।

परिग्रह एक लँगोटीतकका नही ।

उनका जीवन, उनकी वाणी, उनके विचार युग-युगतक जनताका कल्याण करते रहेगे ।

हिंसा, पशुबलि, जातिपाँतिके भेदभाव जिस युगमे बढ गये, उसी युगमे पैदा हुए महावीर और बुद्ध । दोनोने इन चीजोके खिलाफ आवाज उठायी । दोनोने अहिंसाका भरपूर विकास किया ।

जन्म

कोई ढाई हजार साल पुरानी बात है । ईसासे ५९९ साल पहले वैशाली गणतंत्रके कुण्डग्राममे चैत्र शुक्ल तेरसको महावीरका

जन्म हुआ। वैशाली है बिहारके मुजफ्फरपुर जिलेका आजका बसाढ गाँव।

महावीरके पिताका नाम था सिद्धार्थ। यो लोग उन्हे 'सज्जस'—श्रेयास भी कहते थे और 'जसस'—यशस्वी भी। वे ज्ञातृ वशके थे। गोत्र था कश्यप।

महावीरकी माँका नाम था त्रिशला। गोत्र था वशिष्ठ।

महावीरके बडे भाईका नाम था नन्दिवर्धन। बहनका सुदेसणा। माँ-बापकी तीसरी और अन्तिम सन्तान थे महावीर।

जन्म होनेके बाद माता-पिताने नाम रखा वर्धमान।

वचपन

वर्धमानका बचपन राजमहलमे बीता। वे बडे निर्भीक थे। किसीसे डरते नही थे।

आठ बरसके हुए, तो उन्हे पढाने, शिक्षा देने, धनुष आदि चलाना सिखानेके लिए शिल्पशालामें भेजा गया। वर्धमान बचपनसे ही निर्भीक और साहसी थे। एक बार गाँवके बाहर खेलते-खेलते एक साँप दिखाई दिया। और सब साथी तो डरकर भाग गये, किंतु वर्धमान निश्चल भावसे खडे रहे। साँप अपने रास्ते चला गया। उनके साहस, धैर्य और पराक्रमकी अनेक कथाएँ प्रसिद्ध है।

विवाह

श्वेताम्बर मान्यता है कि युवावस्थामे माता-पिताके कहनेसे वर्धमानने विवाह कर लिया था। उनकी पत्नीका नाम था

यशोदा। एक बेटी भी उन्हे हुई थी, जिसका नाम था अयोज्जा–अनवद्या। राजपुत्र जमालीसे उस बेटीका विवाह हुआ था।

दिगम्बर मान्यता है कि वर्धमानका विवाह हुआ ही नही था।

वैराग्य

राजकुमार वर्धमानके माता-पिता पार्श्वनाथके अनुयायी थे। पार्श्वनाथ जैनधर्मके २३वे तीर्थंकर थे और महावीरसे २५० वर्ष पूर्व हुए थे। पार्श्वनाथकी श्रमण परम्परामे अहिसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रहरूप चातुर्याम धर्मका पालन होता था। वर्धमान सबसे प्रेमका व्यवहार करते थे। इस बातका पूरा ध्यान रखते थे कि उनके किसी कामसे किसीको कष्ट न पहुंचे। उन्हे इस बातका अनुभव हो गया कि इन्द्रियोका, विषय-वासनाओका सुख दूसरोको दु ख पहुंचा करके ही पाया जा सकता है।

वैराग्यकी यह भावना दिन-दिन बढती गयी।

तपस्या

माता-पिताके देहान्तके बाद तीस बरसकी भरी जवानीमे वर्धमानने तप धारण किया। वे 'समण' बन गये। उनके शरीर-पर परिग्रहके नामपर एक लँगोटी भी नही रही।

वे ऐसी जगह रहते, जहाँ कोई विरोध न करे। वे जहाँतक होता, ध्यानमे मग्न रहते। मौन रहते। हाथमे ही भोजन कर लेते। गृहस्थोसे किसी चीजकी याचना न करते।

तीस वर्षतक उपदेश करनेके बाद जैन धर्मके अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरने ७२ वर्षकी अवस्थामे ईसापूर्व ५२७ मे अपापापुरीमे कार्तिक (आश्विन) कृष्ण अमावास्याको निर्वाण प्राप्त किया।

भगवान् महावीरके निर्वाण-दिवसपर घर-घर दीपक जलाकर दीपावली मनायी जाती है।

हमारा कल्याण हो जाय, यदि हम भगवान् महावीरका यह छोटा-सा उपदेश ही सच्चे मनसे पालन कर ले कि संसारके सभी छोटे-बडे जीव हमारी ही तरह हैं, हमारी आत्माका ही स्वरूप हैं :

डहरे य पाणे बुड्ढे य पाणे
ते आत्तओ पासइ सव्वलोए ॥

जैन धर्म

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं॥

अरिहंतोंको	नमस्कार।
सिद्धोंको	नमस्कार।
आचार्योंको	नमस्कार।
उपाध्यायोंको	नमस्कार।
सर्व साधुओंको	नमस्कार।

अरिहंतो, सिद्धो, आचार्यो, उपाध्यायो और सर्वसाधुओंको नमस्कार। ये पाँच परमेष्ठी हैं।

यह मंत्र जैन धर्मका परम पवित्र और अनादिमूल मंत्र माना जाता है।

जैन धर्म है, 'जिन' भगवान्‌का धर्म।

'जैन' शब्द

'जैन' कहते हैं उन्हें, जो 'जिन'के अनुयायी हो। 'जिन' शब्द बना है 'जि' धातुसे। 'जि' माने जीतना। 'जिन' माने

जीतनेवाला । जिन्होने अपने मनको जीत लिया, अपनी वाणीको जीत लिया और अपनी कायाको जीत लिया, वे हैं 'जिन' ।

तीर्थंकर

ऐसे 'जिनो'ने, तरन-तारन महात्माओने असंख्य जीवोको इस संसारसे तार दिया । किनारे लगा दिया । 'तीर्थ' कहते हैं घाट-को, किनारेको । धर्म-तीर्थका प्रवर्तन करनेवाले तीर्थंकर कहे जाते हैं ।

जैन धर्ममे तीर्थंकर २४ माने जाते हैं । उनके नाम ये है :

१. ऋषभनाथ
२. अजितनाथ
३. सभवनाथ
४. अभिनन्दन
५. सुमतिनाथ
६. पद्मप्रभ
७ सुपार्श्वनाथ
८ चन्द्रप्रभ
९ पुष्पदन्त
१०. शीतलनाथ
११ श्रेयासनाथ
१२ वासुपूज्य
१३ विमलनाथ
१४ अनन्तनाथ
१५ धर्मनाथ
१६. शान्तिनाथ
१७. कुन्थुनाथ
१८ अरहनाथ
१९ मल्लिनाथ
२० मुनिसुव्रत
२१. नमिनाथ
२२ नेमिनाथ
२३ पार्श्वनाथ
२४. महावीर

ऋषभनाथको 'आदिनाथ', पुष्पदन्तको 'सुविधिनाथ' और महावीरको 'वर्द्धमान', 'वीर', 'अतिवीर' और 'सन्मति' भी कहा जाता है ।

ऋषभनाथ पहले तीर्थंकर हैं, महावीर अन्तिम।

ऋषभदेवका उल्लेख वैदिक साहित्यमे भी पाया जाता है। भागवत पुराणमे इन्हे स्वयंभू मनुकी सतानकी पॉचवी पीढीमे माना जाता है। २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ श्रीकृष्णके चचेरे भाई थे।

वैदिक धर्ममे राम, कृष्ण आदि अवतारोको जैसा आदर दिया जाता है, वैसा ही जैन धर्ममे इन तीर्थंकरोको आदर दिया जाता है। अवतार और तीर्थंकरमे मौलिक अन्तर है। अवतार तो परमात्माके, ईश्वरके प्रतिरूप माने जाते हैं, जो समय-समयपर अनेक रूपोमे जन्म लेते है। लेकिन तीर्थंकर एक ऐसी अवस्था है, जिसमे मनुष्य ही उन्नति करके परमात्मा बन जाता है।

जैन धर्म

जैन धर्म माननेवालोके मुख्य रूपसे दो सम्प्रदाय हैं : दिगम्बर और श्वेताम्बर।

दिगम्बर संप्रदायका मुनि कपडा नही पहनता। दिग् माने दिशा। दिशा ही अम्बर है जिसका, वह दिगम्बर। वेदोमे भी इन्हें 'वातरशना' कहा है।

श्वेताम्वर संप्रदायके मुनि सफेद कपड़े पहनते हैं।

कोई ३०० साल पहले श्वेताम्बरोमेसे ही एक शाखा और निकली 'स्थानकवासी'। ये लोग मूर्तियोको नही पूजते।

तेरहपंथी, बीसपंथी, तारणपंथी, यापनीय आदि कुछ और भी उप-शाखाएँ हैं।

इन सबमे आचार, पूजा-पद्धति आदिको लेकर थोड़ा-बहुत भेद है, पर भगवान् महावीरमे, अहिंसा, संयम और अनेकांत-वादमे सबका समान विश्वास है।

जैनश्रुत

भगवान् महावीरने उपदेश ही दिया। उन्होंने कोई ग्रंथ नही रचा। बादमे उनके गणधरोंने–प्रमुख शिष्योंने–अपने गुरुके उपदेशो और वचनोका संग्रह कर लिया। इनका मूल साहित्य प्राकृतमे है, विशेष रूपसे मागधीमे।

जैन-शासनके सबसे पुराने आगम ग्रंथ ४६ माने जाते हैं :

अगग्रन्थ बारह हैं १. आचार, २ सूत्रकृत, ३. स्थान, ४. समवाय, ५. भगवती, ६. ज्ञाता धर्मकथा, ७. उपासकदशा, ८. अन्तकृतदशा, ९. अनुत्तर उपपातिकदशा, १०. प्रश्न-व्याकरण, ११ विपाक और १२ दृष्टिवाद। इनमे ११ अंग तो मिलते है, बारहवाँ दृष्टिवाद अंग नही मिलता। उसमे १४ पूर्व थे। वे लुप्त हैं।

उपांगग्रन्थ बारह है - १ औपपातिक, २. राजप्रश्नीय, ३ जीवाभिगम, ४ प्रज्ञापना, ५. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, ६. चन्द्र प्रज्ञप्ति, ७. सूर्य प्रज्ञप्ति, ८. निरयावली या कल्पिक, ९. कल्पा-वतसिका, १० पुष्पिका, ११ पुष्पचूडा और १२ वृष्णिदशा।

प्रकीर्णग्रन्थ दस हैं . १. चतु.शरण, २. संस्तार, ३ आतुर प्रत्याख्यान, ४ भक्तपरिज्ञा, ५. तण्डुल वैतालिक, ६. चन्दाविध्यय, ७ देवेन्द्रस्तव, ८ गणितविद्या, ९ महाप्रत्या-ख्यान और १०. वीरस्तव।

ऋषभनाथ पहले तीर्थंकर हैं, महावीर अन्तिम ।

ऋषभदेवका उल्लेख वैदिक साहित्यमे भी पाया जाता है । भागवत पुराणमे इन्हे स्वयंभू मनुकी सतानकी पॉचवी पीढीमे माना जाता है । २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ श्रीकृष्णके चचेरे भाई थे ।

वैदिक धर्ममे राम, कृष्ण आदि अवतारोको जैसा आदर दिया जाता है, वैसा ही जैन धर्ममे इन तीर्थंकरोको आदर दिया जाता है । अवतार और तीर्थंकरमे मौलिक अन्तर है । अवतार तो परमात्माके, ईश्वरके प्रतिरूप माने जाते हैं, जो समय-समयपर अनेक रूपोमे जन्म लेते हैं । लेकिन तीर्थंकर एक ऐसी अवस्था है, जिसमे मनुष्य ही उन्नति करके परमात्मा बन जाता है ।

जैन धर्म

जैन धर्म माननेवालोके मुख्य रूपसे दो सम्प्रदाय हैं : दिगम्बर और श्वेताम्बर ।

दिगम्बर संप्रदायका मुनि कपडा नही पहनता । दिग् माने दिशा । दिशा ही अम्बर है जिसका, वह दिगम्बर । वेदोमे भी इन्हें 'वातरशना' कहा है ।

श्वेताम्बर संप्रदायके मुनि सफेद कपडे पहनते हैं ।

कोई ३०० साल पहले श्वेताम्बरोमेसे ही एक शाखा और निकली 'स्थानकवासी' । ये लोग मूर्तियोको नही पूजते ।

तेरहपंथी, बीसपंथी, तारणपथी, यापनीय आदि कुछ और भी उप-शाखाएँ हैं ।

इन सबमे आचार, पूजा-पद्धति आदिको लेकर थोडा-बहुत भेद है, पर भगवान् महावीरमे, अहिसा, संयम और अनेकान्त-वादमे सबका समान विश्वास है।

जैनश्रुत

भगवान् महावीरने उपदेश ही दिया। उन्होंने कोई ग्रथ नही रचा। बादमे उनके गणधरोने–प्रमुख शिष्योने–अपने गुरुके उपदेशो और वचनोका सग्रह कर लिया। इनका मूल साहित्य प्राकृतमे है, विशेष रूपसे मागधीमे।

जैन-शासनके सबसे पुराने आगम ग्रंथ ४६ माने जाते हैं.

अंगग्रन्थ बारह हैं १ आचार, २ सूत्रकृत, ३. स्थान, ४. समवाय, ५ भगवती, ६ ज्ञाता धर्मकथा, ७. उपासकदशा, ८. अन्तकृतदशा, ९. अनुत्तर उपपातिकदशा, १०. प्रश्न-व्याकरण, ११ विपाक और १२ दृष्टिवाद। इनमे ११ अग तो मिलते हैं, बारहवाँ दृष्टिवाद अंग नही मिलता। उसमे १४ पूर्व थे। वे लुप्त हैं।

उपागग्रन्थ बारह है - १ औपपातिक, २. राजप्रश्नीय, ३ जीवाभिगम, ४ प्रज्ञापना, ५ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, ६. चन्द्र प्रज्ञप्ति, ७. सूर्य प्रज्ञप्ति, ८. निरयावली या कल्पिक, ९. कल्पा-वतसिका, १० पुष्पिका, ११. पुष्पचूड़ा और १२ वृष्णिदशा।

प्रकीर्णग्रन्थ दस हैं - १. चतुशरण, २. सस्तार, ३. आतुर प्रत्याख्यान, ४ भक्तपरिज्ञा, ५ तण्डुल वैतालिक, ६ चन्दाविध्यय, ७ देवेन्द्रस्तव, ८. गणितविद्या, ९. महाप्रत्या-ख्यान और १०. वीरस्तव।

छेदग्रन्थ छह है . १ निशीथ, २. महानिशीथ, ३. व्यवहार, ४ दशशतस्कध, ५ वृहत्कल्प और ६ पञ्चकल्प ।

मूलसूत्र चार हैं . १ उत्तराध्ययन, २ आवश्यक, ३ दशवैकालिक और ४ पिण्डनिर्य्युक्ति ।

स्वतन्त्र ग्रन्थ दो हैं १ अनुयोग द्वार और २ नन्दी द्वार ।

श्वेताम्बर इन ग्रन्थोको मानते हैं, दिगम्बर नही । उनका कहना है कि सारा प्राचीन साहित्य लुप्त हो गया ।

पुराण

जैन-परम्परामे ६३ शलाका-महापुरुष माने गये है। पुराणोमे इनकी कथाएँ तथा धर्मका वर्णन आदि है। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश तथा अन्य देशी भाषाओमे पुराणोकी संख्या बहुत है। दोनो संप्रदायके आचार्योंने सैकडो पुराणोकी रचना की है।

मुख्य पुराण ये हैं : जिनसेनका 'आदिपुराण' और जिनसेन (द्वि०) का 'अरिष्टनेमि' (हरिवंश) पुराण, रविषेणका 'पद्मपुराण' और गुणभद्रका 'उत्तरपुराण'।

दिगम्बर साहित्य

दिगम्बर सम्प्रदायमे षट्खण्डागमको प्राचीन माना जाता है। षट् प्राभृत, अष्ट प्राभृत, मूलाचार, त्रिवर्णाचार, समयसार प्राभृत, प्राभृतसार, प्रवचनसार, नियमसार, पञ्चास्तिकाय, रयणसार, द्वादशानुप्रेक्षा, आप्तमीमासा, रत्नकरण्डश्रावकाचार, तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि आदि अनेक सिद्धान्तग्रन्थोको आदरकी दृष्टिसे देखा जाता है।

आचार्य

कुन्दकुन्द, कार्तिकेय, उमास्वाति, समन्तभद्र, पूज्यपाद, वट्टकेर, सिद्धसेन दिवाकर, अकलकदेव, हरिभद्र, अभयदेव, जिनभद्रगणि, विनयविजय, आनन्दघन, स्वामी विद्यानन्दि, वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र, अमृतचन्द्र अमितगति, हेमचन्द्र, यशोविजय, वसुनन्दि, भीखणजी आदि अनेक आचार्योंने भी अनेक धर्मग्रन्थ लिखे हैं। लगभग दो हजार वर्षकी आचार्य-परम्परामे जैन-आचार्योंने विपुल साहित्यका निर्माण किया है।

जैनदर्शन

जैन धर्ममे संसारको, जगत्को अनादि-अनन्त माना जाता है। जैनी मानते हैं कि इस जगत्का वनानेवाला कोई नही। जैनदर्शनके अनुसार यह जगत् जीव और अजीव इन दो द्रव्यो-के मेलका नाम है। अजीव द्रव्यके पांच भेद हैं–पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इस प्रकार ६ द्रव्यसे यह संसार चलता है। इन द्रव्योमे कभी घटती-वढती नही होती। सिद्धान्त-ग्रन्थोंमे इन ६ द्रव्योका विस्तारसे वर्णन किया गया है। इनमे धर्म और अधर्मनामक जो द्रव्य हैं, वे कर्तव्य-अकर्तव्यके अर्थमे नही हैं। इन ६ द्रव्योके पर्यायोमे हेरफेर होता रहता है। जैन धर्म कहता है कि ईश्वर नामकी ऐसी कोई शक्ति नही है, जो सृष्टिका सचालन, संहार कर सके।

अनेकान्त

जैनदर्शनका सबसे ऊंचा सिद्धान्त है, अनेकान्त। 'अनेकान्त' माने एक चीजके अनेक रूप होना। भिन्न-भिन्न दृष्टिसे जब हम

देखते हैं, तो एक ही चीज एक ही नही, अनेक धर्मात्मक दिख
पडती है। एक दृष्टिसे एक चीज सत् मानी जा सकती है, दूस
दृष्टिसे वही असत्। अनेकान्तमे समस्त विरोधोका समन्व
हो जाता है।

जैसे, देवदत्त किसीका बेटा है तो किसीका बाप। किसीव
भाई है तो किसीका भतीजा। किसीका मित्र है तो किसीव
शत्रु। एक ही देवदत्तके अनेक रूप है। कोई उसे किसी रूप
देखता है, कोई किसी रूपमे। इसलिए उसका कोई एक ही रू
सही है, ऐसा कहना ठीक नही।

जो आदमी इस बातको जानता है कि हर चीज नित्य है
वह जीवन और मृत्युमे सम रहता है।

जो आदमी इस बातको जानता है कि हर चीज नित्य ह
नही, अनित्य भी है, वह उसके संयोग और वियोगमे सम
रहता है।

जो आदमी इस बातको जानता है कि हर चीज सदृश है
वह किसी जीवसे घृणा नही करता।

जो आदमी इस बातको जानता है कि हर चीज सदृश ह
नही, विसदृश भी है, वह किसीमे आसक्त नही होता।

तो, जो आदमी अनेकान्तको मानता है, सत्यको अनेक
दृष्टिकोणोसे देखता है, वह अपने किसी हठको लेकर नही बैठता।
किसी बातपर अडता या झगडता नही। समभावसे रहता है।

इसीका नाम है 'स्याद्वाद'। जैनियोके मतसे इसका अर्थ
है : 'सापेक्षता', 'किसी अपेक्षासे'। अपेक्षाके विचारसे कोई भी

चीज सत् भी हो सकती है, असत् भी। इसीको 'सप्तभंगी नय'से समझाया जाता है।

अहिंसा

प्रत्येक धर्मके दो रूप होते हैं: १. विचार और २. आचार।

जैन धर्मके विचारोका मूल है, अनेकान्त या स्याद्वाद और उसके आचारोका मूल है, अहिंसा और तपस्या।

अहिंसा परमो धर्मः। जैन धर्ममे अहिंसाका सबसे ऊंचा स्थान है। साथ ही उसकी बडी सूक्ष्म व्याख्या और विवेचना भी की गयी है।
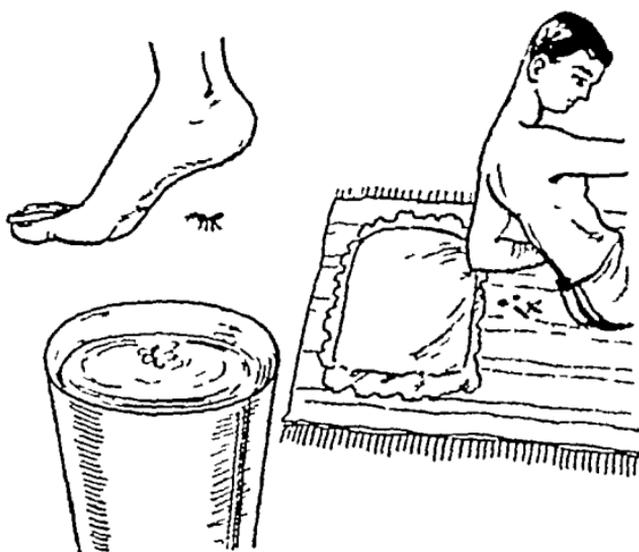
मनुष्य तो मनुष्य, किसी भी त्रस या स्थावर जीवकी हिंसा नही करनी चाहिए। यो तो उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते, खाते-पीते, बोलते-चालते असंख्य जीवोकी हिंसा होती रहती है।

इस हिंसासे हमे भरसक बचना चाहिए। मुनियोंके लिए अहिंसा-की व्याख्या बहुत कडी है, गृहस्थोंके लिए उससे कुछ हलकी। अहिंसाके बारेमे तत्त्वार्थसूत्रमे कहा गया है कि प्रमाद और मन-वचन-कायाके योगसे प्राणोका जो घात होता है, वह हिंसा है। जैन धर्ममे स्थूल-हिंसा तो पाप है ही, पर भाव-हिंसाको ही सबसे बडा पाप कहा गया है।

अहिंसाका एक छोटा-सा उदाहरण है, रात्रिमे भोजन करनेकी मनाही। महावीर कहते हैं.

सन्ति मे सुहुमा पाणा तसा अदुव थावरा।
जाइं राओ अपासंतो कहमेसणियं चरे॥

—ये त्रस अथवा स्थावर प्राणी इतने सूक्ष्म हैं कि रातमे आँखसे देखे नही जा सकते। इसलिए भोजनके लिए कैसे जाया जा सकता है ?

उदउल्लं बीयसंसत्तं पीणा निव्वडिया महिं।
दिया ताइं विवज्जेज्जा राओ तत्थ कहं चरे ?

—जमीनपर कही पानी पडा होता है, कही बीज बिखरे होते हैं। दिनमे भी बड़ी सावधानीसे ही उन्हे किसी तरह बचाया जा सकता है, पर रात्रिमे उन्हे कैसे बचा सकते हैं ?

जीवनमे अहिंसाका अधिकसे अधिक पालन हो, तो यह निश्चय है कि प्राणीमात्रको अधिकसे अधिक सुख मिलेगा। जैन धर्म इसीपर सबसे अधिक जोर देता है।

तपस्या

जैन धर्ममे तपस्याका वहुत ऊँचा स्थान है। तपस्यामे जैन-मुनियोकी तुलना और किसीसे करना कठिन है। वाहरी तप और आन्तरिक तपपर वडा जोर दिया गया है। मुनियोका तप वारह प्रकारका है।

गृहस्थवर्म है : पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत। इन सवमे शरीर, वाणी और कायाकी तपस्या ही तो है।

सदाचार

तपस्याकी मूल भित्ति है सदाचार। जैन वर्ममे ५ व्रत, ५ समिति, ३ गुप्ति और ४ भावनापर वहुत जोर दिया गया है।

व्रत : व्रतोकी महत्ता किससे छिपी है ? व्रतोके दो रूप हैं : महाव्रत और अणुव्रत। गृहस्थ लोग यदि अणुव्रतोका भी ठीकसे पालन कर ले, तो समाजका कल्याण निश्चित है।

व्रत पाँच हैं : १ अहिसा, २. सत्य, ३. अस्तेय (चोरी न करना), ४ ब्रह्मचर्य और ५. अपरिग्रह।

समिति : समिति माने संयमित आचार, सजग व्यवहार। समितियाँ पाँच हैं : १. ईर्या, २ भाषा, ३ एषणा, ४ आदान-निक्षेपण और ५ उत्सर्ग।

१. जीव-जतु पैरसे न कुचले, इसलिए रातमे न चलना, सँभलकर, छोटे-छोटे जीवोको वचाकर चलना ईर्या समिति है।

२. कोमल, मीठे, हितकर, सच्चे, न्यायके अनुकूल वचन

बोलना। असत्य, क्रोध, अभिमान, कपट आदिसे भरे वचन न बोलना भाषा समिति है।

३ इस तरह भिक्षा माँगना कि कोई दोष न हो, एषणा समिति है।

४. ठीक तरहसे चीजोको, कपडोको उठाना और रखना आदान-निक्षेपण समिति है।

५. मल-मूत्र, कफ आदि गन्दगीको ऐसी जगह छोडना कि किसी जीवकी विराधना न हो, गदगी न फैले, उत्सर्ग समिति है।

गुप्ति : गुप्ति माने गोपन करना, रक्षण करना। मन, वाणी और कायाको इस ढगसे रखना कि दोष न होने पाये, पाप न लगने पाये। यह है गुप्ति।

गुप्ति तीन हैं . १.मनोगुप्ति, २ वचनगुप्ति और ३. काय-गुप्ति। न मनमे हिसा या कपट आदिके भाव रखे, न क्रोधभरी, अभिमानभरी वाणी बोले, न असत्य बोले और न किसीको मारने दौड़े, चोरी करे या और कोई पाप करे।

भावना : भावना माने मनमे भाव लाना। भावनाएँ चार हैं . १. मैत्री, २. प्रमोद, ३. कारुण्य और ४. माध्यस्थ्य।

मैत्री सब प्राणियोके प्रति मित्रताकी, प्रेमकी भावना करना। सबका अपराध क्षमा करना। किसीसे वैर न करना।

प्रमोद : अपनेसे जो बडा हो, उन्नत हो, उसके साथ विनयका बर्ताव करना। उसकी सेवा-स्तुतिमे आनन्द मानना।

कारुण्य . दीन-दुखियोके प्रति करुणाकी भावना करना। उन्हे सुख पहुँचाना।

माध्यस्थ्य : जो बिलकुल विपरीत वृत्तिवाला या विरोधी हो, उसके प्रति क्रोध आदि न कर, तटस्थताका भाव बरतना।

तीन रत्न : जैन धर्ममे तीन रत्न माने गये हैं . १. सम्यक्-दर्शन, २. सम्यक्ज्ञान और ३ सम्यक्चारित्र। इसका अर्थ है देख-भालकर चलना। इसके दो प्रकार हैं एक निश्चय, दूसरा व्यवहार।

निश्चय रत्नत्रय है आत्मरूपकी प्रतीति, आत्मरूपका ज्ञान और आत्मरूपमे लीन होना।

व्यवहार रत्नत्रय इस प्रकार है :

१. सम्यक्दर्शन : सम्यक्दर्शनका अर्थ है, सच्चा दर्शन। सच्चे सिद्धान्तमे श्रद्धा रखना। सच्चे देव, शास्त्र, गुरुमे श्रद्धा अथवा सात तत्त्वोमे श्रद्धा।

२. सम्यक्ज्ञान : सम्यक्त्व सहित होनेवाला ज्ञान ही सम्यक्ज्ञान है, जिससे वस्तुका सच्चा ज्ञान हो।

३. सम्यक्चारित्र : भला व्यवहार। सम्यक्दर्शन हो, सम्यक्-ज्ञान हो, पर चारित्र न हो, तो उसका क्या लाभ ? सम्यक्-चारित्र ही सबकी आधार-शिला है।

जैन धर्ममे रत्नत्रयकी बडी महिमा है। तीनो एक साथ ही होते है। तीनो मिलकर ही मोक्षका मार्ग कहलाते हैं।

सात तत्त्व

जैन धर्ममे सात तत्त्व माने गये है : १ जीव, २ अजीव, ३. आस्रव, ४ बन्ध, ५. संवर, ६ निर्जरा और ७. मोक्ष।

जीव : वे, जिनमे चेतना हो। जानने-देखनेकी शक्ति हो। जैसे, वनस्पति, पशु, पक्षी, मनुष्य।

अजीव : जिनमे चेतना न हो। जैसे, लकडी, पत्थर।

आस्रव : बंधनका जो कारण हो। आ + स्रव = आस्रव। आत्माकी ओर कर्मोंका बहना। विषयभोग इन्द्रियरूपी द्वारसे आत्मामे घुसते हैं और उसे बिगाडते है। इनमे कषाय मुख्य हैं। आत्माको जो कसे, दु ख दे, मलिन करे सो कषाय। ये कषाय चार हैं . १ क्रोध, २. मान-अभिमान, ३ माया-कपट और ४ लोभ।

बन्ध . जीवके साथ कर्मका बँध जाना। जैसे, दूध और पानी दोनोकी असली हालत बदल जाती है।

संवर : आस्रवको रोकना, कर्मोंको न आने देना।

निर्जरा : बँधे हुए कर्मोका जीवसे अलग होना। निर्जरा दो तरहकी होती है . १ अविपाक और २ सविपाक।

मोक्ष : आत्माका कर्म-बन्धनोसे छूट जाना। सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे कर्मोंका बन्धन शिथिल होकर जीवको छुटकारा मिलता है। आत्मा परमात्मा बनती है।

कुछ लोग पाप और पुण्यको लेकर नौ पदार्थ मानते है।

पुण्य है . अन्नदान, जलदान, स्थानदान, शय्यादान, वस्त्र-दान, सद्भावदान, सद्वचनदान, सत्कार्यदान और प्रणाम।

पाप हैं अठारह . हिसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान—चुगली

खाना, पर-परिवाद—दूसरेकी निंदा, रति; अरति—राग, द्वेप, मिथ्यादर्शन और शल्य—मनको छेदनेवाली वात ।

कर्म-सिद्धान्त

जैन धर्ममे कर्म-सिद्धान्तपर वहुत जोर दिया गया है। ये कर्म आठ हैं। कर्म वह है, जो आत्माका असली स्वभाव प्रकट न होने दे। उसे ढँक दे।

जैन धर्ममे ऐसा माना जाता है कि संसारके प्राणी जो दुःख भोग रहे है, उसका कारण है उनका अपना-अपना कर्म। इस कर्म-वन्धनसे मुक्त होना ही मोक्ष है। कर्मका जैन-सिद्धान्तमे वह अर्थ नही है, जिसे कर्तव्य-कर्म कहा जाता है। 'कर्म' नामके परमाणु होते हैं, जो आत्माकी तरफ निरन्तर खिचते रहते हैं। पुद्गलके सूक्ष्मसे सूक्ष्म रूपको परमाणु कहते हैं। मनुष्यकी प्रवृत्ति और परिणामके अनुसार वैसे कर्म-परमाणु आत्मासे चिपट जाते है और उनमे शक्ति भी आ जाती है। ये कर्म फिर सुख-दु.ख देते है।

आत्माको जीतो

कर्म-बन्धनसे छुटकारा पानेके लिए एक ही उपाय है और वह यह कि रागद्वेपसे अतीत बनो, वीतराग बनो। अहिंसा और अभय, त्याग और तपस्या, अस्तेय और अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और सदाचारसे ही आत्माको जीता जा सकता है। विषमता दूर कर समता प्राप्त की जा सकती है। तभी शाति मिलेगी और शाति ही तो है निर्वाण।

"संति निव्वाणमाहियं !"

: ३ :

धर्मका आचरण करो : १ :

धम्मो मंगल-मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो ॥[१]

धर्म सबसे उत्तम मंगल है । धर्म है, अहिंसा, संयम और तप । जो धर्मात्मा है, जिसके मनमे सदा धर्म रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं ।

पाणे य नाइवाएज्ज अदिन्न पि य नायए ।
साइयं न मुसं बूया एस धम्मे वुसीमओ ॥[२]

छोटे-बडे किसी प्राणीको न मारना, बिना दी हुई चीज न लेना, विश्वासघातरूपी असत्य व्यवहार न करना, यही है आत्मनिग्रही लोगोका धर्म । साधु लोग इसी धर्मका पालन करते हैं ।

---

१. दशवै० १।१ । २. सूत्रकृत० १।८।१९ ।

समया सव्व भूएसु सत्तुमित्तेसु वा जगे।
पाणाइवायविरई जावज्जीवाए दुक्करं ॥[1]

चाहे शत्रु हो चाहे मित्र, चाहे वैरो हो चाहे मीत, सभी जीवोंपर, सभी प्राणियोंपर समभाव रखना, सबको अपने जैसा समझना ही अहिंसा है। जीवनभर किसी भी प्राणीको मन, वचन और कायासे न सताना, किसीकी हिंसा न करना सचमुच बहुत कठिन है।

संयम

तमाहु लोए पडिबुद्ध जीवी।
सो जीयइ संजम जीविएण ॥[2]

इस लोकमे सदा जागनेवाला वही है, जो संयमी जीवन बिताता है।

तहेव हिंसं अलियं चोज्जं अबम्भसेवण।
इच्छाकामं च लोभं च संजओ परिवज्जए ॥[3]

सयमी पुरुष इन चीजोको छोड दे . हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, भोगकी लिप्सा और लोभ।

तप

तवो य दुविहो वुत्तो बाहिरब्भन्तरो तहा।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो एवमब्भन्तरो तवो ॥[4]

तप दो तरहका बताया गया है: १ बाहरी और २ भीतरी। बाहरी तप ६ तरहका है, भीतरी भी ६ तरहका है।

---

१. उत्तरा० १९।२५। २ दशवै० २।१५। ३. उत्तरा० ३५।३। ४. वही, २८।३४।

अणसणमूणोयरिया भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ ।
कायकिलेसो संलीणया य वज्झो तवो होई ॥[1]

बाहरी तप है : अनशन, ऊनोदरिका, भिक्षाचरी, रसपरित्याग, कायक्लेश और सलीनता ।

पायच्छित्तं विणओ वेयावच्च तहेव सज्झाओ ।
झाणं उस्सग्गो वि य अब्भितरो तवो होई ॥[2]

भीतरी तप है : प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य—देव, गुरु और धर्मकी सेवा, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग–आत्मभावमे रमना ।

आठ प्रकारके कर्म : २ :

नाणस्सावरणिज्जं, दंसणावरणं तहा ।
वेयणिज्जं तहा मोहं, आउकम्मं तहेव य ॥
नामकम्मं च गोयं च, अंतरायं तहेव य ।
एवमेयाइं कम्माइं, अट्ठेव उ समासओ ॥[3]

१. ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५ आयु, ६ नाम, ७. गोत्र और ८ अन्तराय—ये आठ कर्म है ।

ज्ञानावरणीय कर्म : वह कर्म, जिससे आत्माके ज्ञान-गुणपर पर्दा पड जाय । जैसे, सूर्यका बादलमे ढक जाना ।

---

१. उत्तरा० ३०।८ । २. वही, ३३।२ । ३. वही, ३०।३० ।

दर्शनावरणीय कर्म : वह कर्म, जिससे आत्माकी दर्शन-शक्तिपर पर्दा पड जाय। जैसे, चपरासी वडे साहवसे मिलनेपर रोक लगा दे।

वेदनीय कर्म : वह कर्म, जिससे आत्माको साताका–सुखका और असाताका—दु खका अनुभव हो। जैसे, गुडभरा हँसिया—मीठा भी, काटनेवाला भी।

मोहनीय कर्म : वह कर्म, जिससे आत्माके श्रद्धा और चारित्रगुणोपर पर्दा पड जाता है। जैसे, शराव पीकर मनुष्य नही समझ पाता कि वह क्या कर रहा है।

आयु कर्म : वह कर्म, जिससे आत्माको एक शरीरमे नियत समयतक रहना पडे। जैसे, कैदीको जेलमे।

नाम कर्म . वह कर्म, जिससे आत्मा मूर्त होकर शुभ और अशुभ शरीर धारण करे। जैसे, चित्रकारकी रंगविरंगी तस्वीरे।

गोत्र कर्म : वह कर्म, जिससे आत्माको उँची-नीची अवस्था मिले। जैसे, कुम्हारके छोटे-बडे बर्तन।

अन्तराय कर्म : वह कर्म, जिससे आत्माकी लब्धिमे विघ्न पडे। जैसे, राजाका भण्डारी। विना उसकी मर्जीके राजाकी आज्ञासे भी काम नही बनता।

जमियं जगई पुढो जगा, कम्मेहिं लुप्पन्ति पाणिणो।
सममेव कडेहिं गाहई, णो तस्सा मुच्चेज्जऽपुट्ठय ॥[१]

इस धरतीपर जितने भी प्राणी हैं, वे सब अपने-अप संचित कर्मोंके कारण ही संसारमे चक्कर लगाया करते हैं। अप किये कर्मोंके अनुसार वे भिन्न-भिन्न योनियोमे जन्म लेते हैं। कि हुए कर्मोंका फल भोगे बिना प्राणीका छुटकारा नही होता।

जह मिउलेवालित्त गरुयं तुव अहो वयइ एवं।
आसव-कय-कम्म-गुरु, जीवा वच्चति अहरगइं॥
तं चेव तव्विमुक्कं जलोवरि ठाइ जायलहुभावं।
जह तह कम्मविमुक्का लोयग्गपइट्ठिया होंति॥[२]

जिस तरह तुम्बीपर मिट्टीकी तहें जमानेसे वह भारी हो जाती है और डूबने लगती है, ठीक उसी तरह हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार तथा मूर्छा, मोह आदि आस्रवरूप कर्म करनेसे आत्मा-पर कर्मरूप मिट्टीकी तहे जम जाती हैं और वह भारी बनकर अधोगतिको प्राप्त हो जाती है।

---

१. सूत्र कृताग, १-२-१-४। २. ज्ञाता सूत्र, ६।

यदि तुम्बीके ऊपरकी मिट्टीकी तहे हटा दी जायं तो वह हल्की होनेके कारण पानीपर आ जाती है और तैरने लगती
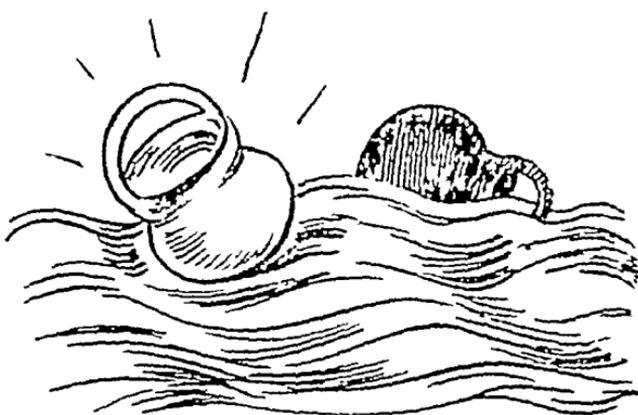
है। वैसे ही यह आत्मा भी जब कर्म-बन्धनोसे सर्वथा मुक्त हो जाती है, तब ऊपरकी गति प्राप्त करके लोकाग्र भागपर पहुँच जाती है और वहाँ स्थिर हो जाती है।

आत्मासे आत्माको जीतो : ४ :

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण वज्झओ।
अप्पाणमेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेह ए॥[1]

हे पुरुष, तू आत्माके साथ ही युद्ध कर। बाहरी शत्रुओके साथ किसलिए लडता है? आत्माके द्वारा ही आत्माको जीतनेसे सच्चा सुख मिलता है।

---

१ उत्तराध्य० ९।३५

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुक्खाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय—सुपट्ठिओ ॥[1]

आत्मा स्वयं ही दुख तथा सुखोंको उत्पन्न तथा ना
करनेवाली है। सन्मार्गपर चलनेवाली सदाचारी आत्मा मित्र
रूप है, जब कि कुमार्गपर चलनेवाली दुराचारी आत्मा शत्रु ।

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिए ।
एगं जिणेज्ज अप्पाण, एस से परमो जओ ॥[2]

पुरुष दुर्जय सग्राममे दस लाख शत्रुओपर विजय प्राप्त करे
उसकी अपेक्षा तो वह अपनी आत्मापर ही विजय प्राप्त कर ले
यही श्रेष्ठ विजय है ।

कषायोंको छोड़ो　　: ५ :

कोहं माण च मायं च लोभं च पापवड्ढणं ।
वमे चत्तारि दोसे उ इच्छन्तो हियमप्पणो ॥[3]

जो आदमी अपना भला चाहता है, उसे पाप बढाने-
वाले इन चार दोषोको सदाके लिए छोड देना चाहिए : क्रोध,
मान, माया और लोभ ।

उवसमणे हणे कोहं माणं मद्दवया जिणे ।
मायं च अज्जवभावुण लोहं संतोसहो जिणे ॥[4]

---

१. उत्तरा० २०।३७ । २ वही, ९।३४ । ३. दशवै० ८।३७ ।
४. वही, ८।३९ ।

क्रोधको शातिसे जीतो, मानको नम्रतासे जीतो, मायाको सरलतासे जीतो, लोभको संतोषसे जीतो।

अहे वयन्ति कोहेणं माणेण अहमा गई।
माया गई पडिग्घाओ लोहाओ दुहुओ भयं ॥[1]

क्रोधसे मनुष्य नीचे गिरता है। अभिमानसे अधम गतिको पाता है। मायासे सद्गतिका नाश होता है। लोभसे इस लोकमे भी भय रहता है, परलोकमे भी।

कोहो य माणो य अणिग्गहीया माया य लोभो य पवड्ढमाणा।
चत्तारि एए कसिणा कसाया सिंचन्ति मूलाइं पुणव्वयस्स ॥[2]

काबूमे न लाया गया क्रोध और अभिमान, बढती हुई माया और लोभ ये चारो नीच कषाय पुनर्जन्मरूपी संसार-वृक्षकी जडोको बराबर सीचते रहते हैं।

कषायोंके भेद

सोलसविहभेएणं, कम्मं तु कसायजं।[3]

कषाय मोहनीय कर्मके सोलह प्रकार हैं। कषाय चार हैं : १. क्रोध, २ मान, ३. माया और ४. लोभ। हरएकके चार-चार भेद हैं।

क्रोधके भेद

१ अनन्तानुबन्धी क्रोध : पर्वतमे पडी दरार जैसे जुड़ती नही, वैसे ही ऐसा क्रोध जीवनभर शान्त नही होता। (बेहद क्रोध)

---

१. उत्तरा० ९।५४। २. दशवै० ८।४०। ३. उत्तरा० ३३।११।

२. अप्रत्याख्यानी क्रोध : पृथ्वीमे पडी दरार जैसे वर्षा आनेपर पट जाती है, वैसे ही ऐसा क्रोध एक-आध सालमे शान्त हो जाता है। (बहुत क्रोध)

३. प्रत्याख्यानी क्रोध : रेतमे खीची रेखा जैसे वायुके झोंकेसे

मिट जाती है, वैसे ही ऐसा क्रोध एक-आध मासमे शान्त हो जाता है। (मामूली क्रोध)

४. संज्वलन क्रोध : पानीमे खीची रेखा जैसे शीघ्र नष्ट हो जाती है, वैसे ही ऐसा क्रोध जल्दी शान्त हो जाता है। (मीठा क्रोध)

मानके भेद

५. अनन्तानुबन्धी मान : पत्थरके खम्भेके समान, जो किसी प्रकार झुकता ही नही।

६. अप्रत्याख्यानी मान : हड्डीके समान, जो बडी कठिनाईसे
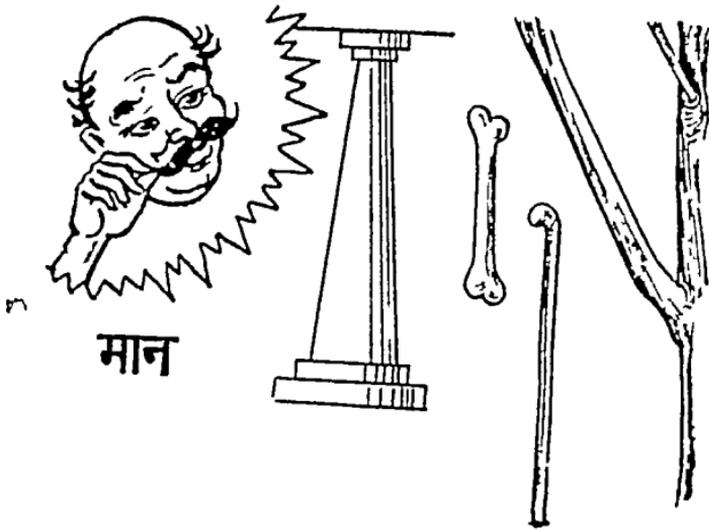
झुकता है।

७. प्रत्याख्यानी मान : काठके समान, जो उपाय करनेपर झुकता है।

८. संज्वलन मान : बेतकी लकडीके समान, जो आसानीसे झुक जाता है।

मायाके भेद

९. अनन्तानुवन्धी माया : बाँसकी कठोर जड जैसी, जो किसी तरह टेढापन नही छोडती।

१०. अप्रत्याख्यानी माया : मेढेके सीग जैसी, जो बडे प्रयत्न-से अपना टेढापन छोडती है।

११ प्रत्याख्यानी माया : बैलके मूत्रकी धार जैसी, जो वायु-के झोकेसे मिट जाती है।

१२. संज्वलन माया : बाँसकी चीपटके समान।

लोभके भेद

१३. अनन्तानुबन्धी लोभ : किरमिचके रग जैसा दाग, जो एक बार चढनेपर उतरता नही। (बेहद लालच)
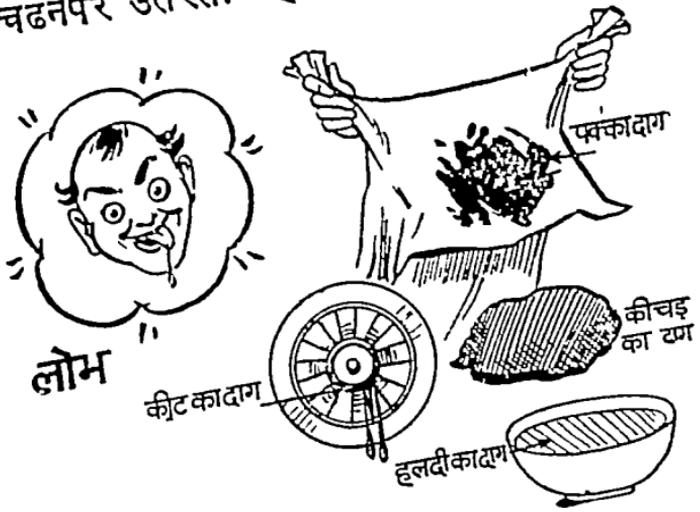
१४. अप्रत्याख्यानी लोभ : गाडीके कीट जैसा दाग,

एक बार कपड़ेको गन्दा कर देनेपर बडे प्रयत्नसे मिटता है। (बहुत लालच)

१५. प्रत्याख्यानी लोभ : कीचड जैसा दाग, जो कपड़ोपर पड जानेपर साधारण प्रयत्नसे छूट जाता है। (मामूली लालच)

१६ संज्वलन लोभ : हल्दीके रंग जैसा दाग, जो सूर्यकी धूप लगते ही दूर हो जाता है। (मीठा लालच)

किसीकी हिंसा मत करो : ६ :

जावन्ति लोगे पाणा तसा अदुवा थावरा।
ते जाणमजाण वा न हणे नो विघायए॥[1]

इस लोकमे जितने भी त्रस और स्थावर जीव हैं, उनकी न तो जानमे हिंसा करो, न अनजानमे। दूसरोसे भी किसीकी हिंसा न कराओ।

स्थावर जीव होते हैं एक इन्द्रियवाले, स्पर्श-इन्द्रियवाले

१. दशवै० ६।१०
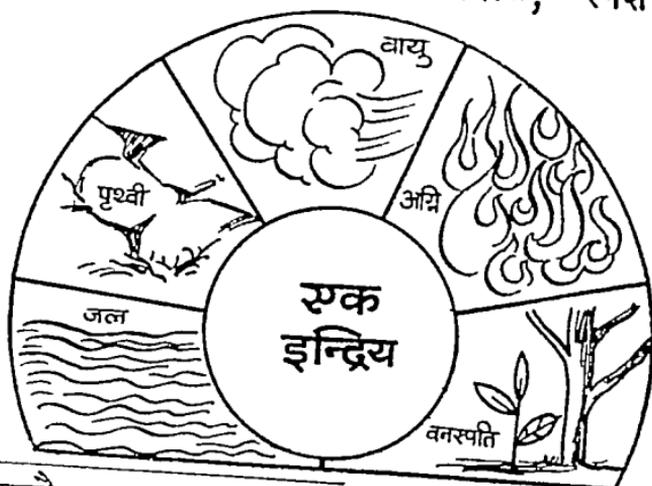
जीव। ये पैदा होते हैं, बढ़ते है, मरते है, पर अपने-आप चल-फिर नही सकते। जैसे, पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, वनस्पति आदि।

त्रस जीव होते हैं दो, तीन, चार अथवा पाँच इन्द्रियवाले जीव। ये जीव अपनी इच्छासे चल-फिर सकते है, डरते हैं, भागते हैं, खाना ढूँढते है।

दो इन्द्रियवाले जीवोके दो इन्द्रियाँ होती हैं : एक स्पर्शन, दूसरी रसना। जैसे, केंचुआ, घोघा, जोक आदि।

तीन इन्द्रियवाले जीवोके तीन इन्द्रियाँ होती हैं : स्पर्शन, रसना और घ्राण। वे छू सकते हैं, स्वाद ले सकते हैं, सूँघ सकते हैं। जैंसे, चीटी, खटमल, जूँ, घुन, दीमक आदि।
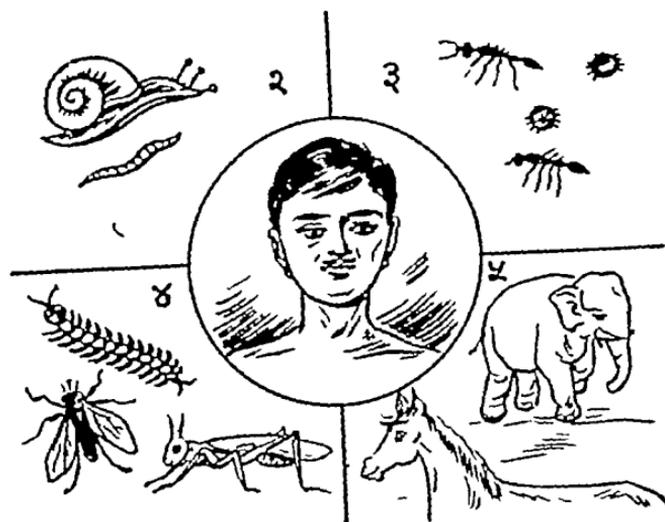
चार इन्द्रियवाले जीवोके चार इन्द्रियाँ होती हैं : स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु। जैसे, मक्खी, मच्छर, भौंरा, बर्रें, टिड्डी, बिच्छू आदि।

पाँच इन्द्रियवाले जीवोंके पाँच इन्द्रियाँ होती है. स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण। जैसे, स्त्री, पुरुष, बालक, गाय, बैल, घोडा, हाथी, मगरमच्छ, साँप, चिडिया आदि।

जगनिस्सिएहिं भूएहिं तसनामेहिं थावरेहि च।
नो तेसिमारभे दण्डं मणसा वयसा कायसा चेव ॥[1]

संसारमे जितने भी त्रस और स्थावर जीव है, उन्हे न तो शरीरसे दण्ड दो, न वचनसे दण्ड दो और न मनसे दण्ड दो।

अज्झत्थं सव्वओ सव्वं दिस्स पाणे पियायए।
न हणे पाणिणो पाणे भयवेराओ उवरए ॥[2]

सबके भीतर एक ही आत्मा है, हमारी ही तरह सबको अपने प्राण प्यारे हैं, ऐसा मानकर डर और वैरसे छूटकर किसी प्राणीकी हिंसा न करें।

सयं तिवायए पाणे अदुवाऽन्नेहिं घायए।
हणन्त वाऽणुजाणाइ वेरं वड्ढई अप्पणो ॥[3]

जो परिग्रही आदमी खुद हिंसा करता है, दूसरोसे हिंसा करवाता है और दूसरोकी हिंसाका अनुमोदन करता है, वह अपने लिए वैर ही बढाता है।

एयं खु नाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचण।
अहिंसा समयं चेव एयावन्त वियाणिया ॥[4]

---

१. उत्तरा० ८।१०। २. वही, ६।७। ३ सूत्रकृत० १।१।१।३। ४. वही, १।११।१०।

ज्ञानी होनेका सार यही है कि किसी भी प्राणीकी हिंसा न करो। अहिंसाका इतना ही ज्ञान काफी है। यही अहिंसाका विज्ञान है।

सव्वे पाणा पियाउया सुहसाया दुक्ख पडिकूला।
अप्पियवहा पियजीविणो,
जीविउकामा सव्वेसि जीवियं पियं ॥[1]

सभी प्राणियोको अपने प्राण प्यारे है। सबको सुख अच्छा लगता है, दु.ख अच्छा नही लगता। हिंसा सभीको बुरी लगती है। जीना सबको प्यारा लगता है। सभी जीव जीवित रहना पसन्द करते हैं। सबको जीवन प्रिय है।

नाइवाइज्ज किंचण।[2]

किसी भी प्राणीकी हिंसा मत करो।

आयातुले पयासु।[3]

प्राणियोके प्रति वैसा ही भाव रखो, जैसा अपनी आत्माके प्रति रखते हो।

तेसिं अच्छणजोएण निच्चं होयव्वयं सिया।
मणसा कायवक्केण एव हवइ संजए ॥[4]

सभी जीवोके प्रति अहिंसक होकर रहना चाहिए। सच्चा संयमी वही है, जो मनसे, वचनसे और शरीरसे किसीकी हिंसा नही करता।

अजयं चरमाणो उ पाणभूयाइं हिंसइ।
बधइ पावयं कम्मं तं से होइ कडुयं फलं ॥[5]

---

१. आचाराग १।२।३। २. वही, १।२।४। ३ सूत्रकृत० १।११।३।
४. दशवै० ८।३। ५. वही, ४।१।

जो आदमी चलनेमे असावधानी बरतता है, विना ठीकसे देखे-भाले चलता है, वह त्रस और स्थावर जीवोकी हिंसा करता है। ऐसा आदमी कर्मबन्धनमे फँसता है। उसका फल कडुआ होता है।

अजयं आसमाणो उ पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं तं से होइ कडुयं फलं ॥[1]

जो आदमी बैठनेमे असावधानी बरतता है, बिना ठीकसे देखे-भाले बैठता है, वह त्रस और स्थावर जीवोकी हिंसा करता है। ऐसा आदमी कर्मबन्धनमे फँसता है। उसका फल कडुआ होता है।

अजयं भुञ्जमाणो उ पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं तं से होइ कडुयं फलं ॥[2]

जो आदमी भोजन करनेमे असावधानी बरतता है, बिना ठीकसे देखे-भाले भोजन करता है, वह त्रस और स्थावर जीवोकी हिंसा करता है। ऐसा आदमी कर्मबन्धनमे फँसता है। उसका फल कडुआ होता है।

अजयं भासमाणो उ पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं तं से होइ कडुयं फलं ॥[3]

---

१. दशवै० ४।२। २. वही, ४।५। ३. वही, ४।६।

जो आदमी बोलनेमे असावधानी बरतता है, वह त्रस और स्थावर जीवोकी हिंसा करता है। ऐसा आदमी कर्मबन्धनमे फँसता है। उसका फल कडुआ होता है।

सव्वे अक्कन्तदुक्खा य अओ सव्वे न हिंसया ॥[१]

'दु खसे सभी जीव घबराते हैं' ऐसा मानकर किसी भी जीवको कष्ट नही पहुँचाना चाहिए।

हितकारी सत्य बोलो : ७ :

पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि।
सच्चस्स आणाए से उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ ॥[२]

हे पुरुष ! तू सत्यको ही सच्चा तत्त्व समझ। जो बुद्धिमान् सत्यकी ही आज्ञामे रहता है, वह मृत्युको तैरकर पार कर जाता है।

निच्चकालऽप्पमत्तेणं मुसावायविवज्जणं।
भासियव्वं हियं सच्चं निच्चाऽऽउत्तेण दुक्करं ॥[३]

प्रमादमे पडे बिना सदा असत्यका त्याग करे। सच बोले। हितकर बोले। सदा ऐसा सत्य बोलना कठिन होता है।

---

१. सूत्रकृत० १।११।९। २. आ० श्रु० १।३।३। ३. उत्तरा० १९।२६।

अप्पणट्ठा परट्ठा वा कोहा वा जइ वा भया ।
हिंसगं न मुसं बूया नो वि अन्नं वयावए ॥[१]

न तो अपने लाभके लिए झूठ बोले, न दूसरेके लाभके लिए। न तो क्रोधमे पडकर झूठ बोले, न भयमे पडकर। दूसरो-को कष्ट पहुँचानेवाला असत्य न तो खुद बोले, न दूसरेसे बुलवाये।

तहेव फरुसा भासा गुरुभूओवघाइणी ।
सच्चा वि सा न वत्तव्वा जओ पावस्स आगमो ॥[२]

सच बात भी यदि कडवी हो, उससे किसीको दुःख पहुँचता हो, उससे प्राणियोंकी हिंसा होती हो, तो वह न बोलनी चाहिए। उससे पापका आगमन होता है।

तहेव काणं काणे त्ति पंडगं पंडगे त्ति वा ।
वाहियं वा वि रोगि त्ति तेणं चोरे त्ति नो वए ॥[३]

कानेको काना कहना, नपुंसकको नपुंसक कहना, रोगीको रोगी कहना, चोरको चोर कहना है तो सत्य, पर ऐसा कहना ठीक नही। इससे इन लोगोको दुःख होता है।

मुहुत्तदुक्खा उ हवंति कंटया,
अओमया ते वि तओ सुउद्धरा ।
वाया दुरुत्ताणि दुरुद्धराणि,
वेराणुबन्धीणि महब्भयाणि ॥[४]

---

१. दशवै० ६।१२ । २ वही, ७।११ । ३. वही, ७।१२ । वही, ९।३।७ ।

लोहेका काँटा चुभ जाय तो घडी दो घडी ही दुख होता है । वह आसानीसे निकाला जा सकता है । पर व्यग्य वाण, अशुभ वाणीका काँटा तो हृदयमे एक वार चुभ जाय, तो फिर कभी निकाला ही नही जा सकता । वह वरसोतक सालता रहता है । उससे वैरानुबन्ध होता है, भय पैदा होता है ।

अपुच्छिओ न भासेज्जा भासमाणस्स अंतरा ॥
पिट्ठिमंस न खाएज्जा मायामोसं विवज्जए ॥[१]

न तो बिना पूछे उत्तर दे । न दूसरोके बीचमे बोले । न पीठ पीछे किसीकी निंदा करे । न बोलनेमे कपटभरे झूठे शब्दो-को काममे लाये ।

---

१. दशवै० ८।४७ ।

चोरी तिनकेकी भी नहीं

'अदत्तादाणं हरदहमरणभयकलुसतासणपर
संतिमऽभेज्ज लोभमूलं
अकित्ति करणं अणज्जं
साहुगरहणिज्जं पियजणमित्तजणभेद
विप्पीतिकारक रागदोसवहुलं ॥'[1]

अदत्तादान (चोरीका धन) दूसरोके हृदयको जलानेवाला होता है। मरणभय, पाप, कष्ट और पराये धनकी लिप्साका कारण है और लोभकी जड है।

वह अपयश देनेवाला है। न करने लायक काम है। साधु लोग उसकी निंदा करते हैं। वह अपने प्रेमियों और मित्रोंके बीच भेद डालनेवाला है। विपत्तिका कारण है। तरह-तरहके राग-द्वेष बढानेवाला है।

दंतसोहणमाइस्स अदत्तस्स विवज्जणं।
अणवज्जेसणिज्जस्स गिण्हणा अवि दुक्करं ॥[2]

मालिक न दे तो दाँत कुरेदनेकी सीक भी नही लेना। संयमीको केवल उतनी ही चीजे लेनी चाहिए, जो जरूरी हों और जिनमे किसी तरहका दोष न हो। ये दोनो बातें कठिन है।

चित्तमंतमचित्तं वा अप्पं वा जइ वा वहुं।
दंतसोहणमित्तं वि उग्गहंसि अजाइया ॥

---

१ प्रश्न० ३।९। २. उत्तरा० १९।२८।

तं अप्पणा न गिण्हंति नो वि गिण्हावए परं ।
अन्नं वा गिण्हमाणं वि नाणुजाणंति संजया ॥[1]
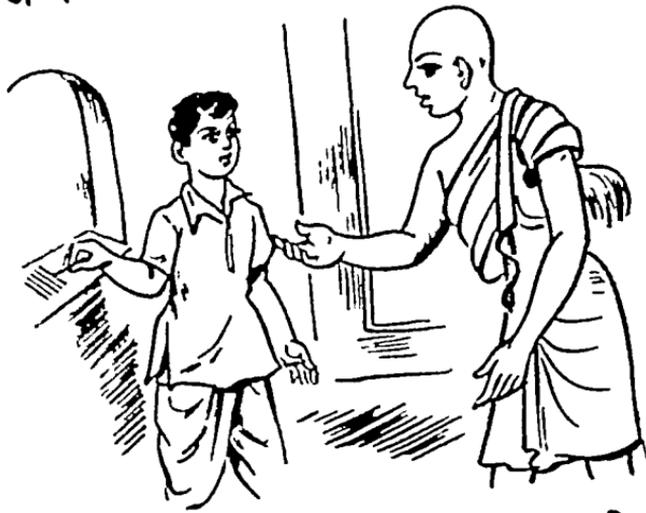
जो लोग संयमी है, वे मालिकसे बिना पूछे न तो कोई सचित्त चीज लेते हैं, न अचित्त । फिर वह चीज कम हो चाहे ज्यादा । दाँत कुरेदनेकी सीक ही क्यो न हो । वे न तो खुद लेते हैं, न दूसरेसे लिवाते हैं और न किसी दूसरेको उसके लिए अनुमति ही देते हैं ।

रूवे अतित्ते य परिग्गहे य सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं ।
अतुट्ठि दोसेण दुही परस्स लोभाविले आययई अदत्तं ॥[2]

मनोहर रूप ग्रहण करनेवाला जीव कभी अघाता ही नही । उसकी आसक्ति बढती ही जाती है । उसे कभी तृप्ति होती ही नही । इस अतृप्तिके दोषसे दुःखी होकर उसे दूसरेकी सुन्दर चीजोका लोभ सताने लगता है और वह चोरी कर बैठता है ।

---

१. दशवै० ६।१४,१५ । २. उत्तरा० ३२।२९ ।

बंभचेर-उत्तमतव-नियम-नाण-दसण-चरित्त-
सम्मत-विणयमूलं ।[1]

ब्रह्मचर्य उत्तम तपस्या, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, संयम और विनयकी जड है ।

तवेसु वा उत्तम बंभचेरं ।[2]

तपस्यामे ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ तपस्या है ।

इत्थिओ जे न सेवन्ति, आइमोक्खा हु ते जणा ।।[3]

स्त्रियोसे जो पुरुष सम्बन्ध नही रखते; वे मोक्षमार्गकी ओर बढते हैं ।

ब्रह्मचर्यके दस उपाय : ब्रह्मचर्यकी रक्षाके दस उपाय हैं ।

जं विवित्तमणाइन्नं रहियं थीजणेण य ।
बम्भचेरस्स रक्खट्ठा आलयं तु निसेवए ।।[4]

(१) ब्रह्मचारी ऐसी जगहमे रहे, जहाँ एकान्त हो, बस्ती कम हो, जहाँपर स्त्रियाँ न रहती हो ।

मणपल्हायजणणी कामरागविवड्ढणी ।
बम्भचेररओ भिक्खू थीकहं तु विवज्जए ।।[5]

---

१. प्रश्न सवर द्वार ४।१ । २. सूत्रकृत १।६।२३ । ३. वही, १।१५।९ । ४. उत्तरा० १६।१ । ५ वही, १६।२ ।

(२) ब्रह्मचारीको स्त्रियोसम्बन्धी ऐसी सारी बाते छोड देनी चाहिए, जो चित्तमे आनन्द पैदा करती हो और विषय-वासनाको बढाती हो ।

समं च संथवं थीहिं संकहं च अभिक्खणं ।
बम्भचेररओ भिक्खू निच्चसो परिवज्जए ॥[1]

(३) ब्रह्मचारी ऐसे सभी प्रसंग टाले, जिनमे स्त्रियोसे परिचय होता हो और बार-बार बातचीत करनेका मौका आता हो ।

अंगपच्चंगसंठाणं चारुल्लवियपेहियं ।
बम्भचेररओ थीणं चक्खुगिज्झं विवज्जए ॥[2]

(४) ब्रह्मचारी स्त्रियोके अंगोको, उनके हावभावो और कटाक्षोको न देखे ।

दीक्षा लेनेके बाद साध्वी राजीमती एक बार रैवतक पर्वतकी ओर जा रही थी । रास्तेमे पानी बरसनेसे उसके कपड़े भीग गये । पासमे एक अँधेरी गुफा थी । वहाँ एकान्त समझकर उसने अपने सारे कपडे उतार दिये और सूखनेको फैला दिये ।

अरिष्टनेमिके छोटे भाई रथनेमि दीक्षा लेकर उसी गुफामे ध्यान कर रहे थे । उन्होंने राजीमतीको नग्न अवस्थामे देखा तो उनका चित्त विचलित हो गया ।

---

१. उत्तरा० १६।३ । २ वही, १६।४ ।

राजीमती सकुचकर अपने अंगोको समेटकर जमीनपर बैठ गयी ।

रथनेमिको कामसे विचलित होते देखकर राजीमतीने उसे फटकारते हुए कहा -

जइऽसि रूवेण वेसमणो ललिएण नलकूबरो ।
तहावि ते न इच्छामि जइऽसि सक्खं पुरंदरो ॥[1]

रूपमे भले ही तू वैश्रवणकी तरह हो, भोगलीलामे नल-कूबरकी तरह, इन्द्रकी तरह हो, तो भी मै तेरी इच्छा नही करती ।

पक्खंदे जलियं जोइं धूमकेउं दुरासयं ।
नेच्छन्ति वंतयं भोत्तुं कुले जाया अगंधणे ॥[2]

---

१. उत्तरा० २२।४१ । २. वही, २२।४२ ।

अगधन कुलमे पैदा हुए सर्प जगमगाती आगमें जलकर मरना पसन्द करते हैं। पर एक बार जिस विषको वमन कर देते हैं, उसे फिरसे पीना पसन्द नही करते।

थिरत्थु तेऽजसोकामी जो तं जीवियकारणा।
वंत इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ॥[१]

हे कामी ! तू वमन की हुई चीजको पीनेकी इच्छा करता है। इससे तो तेरा मर जाना अच्छा।

जइ तं काहिसी भावं जा जा दिच्छसि नारिओ।
वायाविद्धो व्व हडो अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥[२]

जिन-जिन स्त्रियोको तू देखे, उन सबको यदि तू भोगनेकी इच्छा करेगा तो हवासे काँपनेवाले जड वृक्षकी तरह तू अस्थिर बन जायगा और अपने चित्तकी समाधिको खो बैठेगा।

राजीमतीने रथनेमिको इस तरह समझाते हुए कहा :

इंदियाइं वसे काउं अप्पाणं उवसंहरे।[३]

अपनी इन्द्रियोको वशमे कर। अपनी आत्माको जीत। विषयोको छोड़। तभी तू सुखी होगा।

रथनेमिपर राजीमतीके शब्दोका बडा असर हुआ। पवित्र उपदेशके शीतल जलसे उसकी वासना शान्त हो गयी। जैसे अंकुशसे हाथी रास्तेपर आ जाता है, उसी तरह उसका मन स्थिर हो गया।

---

१. उत्तरा० २२।४३। २. वही, २२।४५। ३. वही, २२।४०।

कूइयं रुइयं गीयं हसियं थणियकन्दियं ।
बम्भचेररओ थीणं सोयगेज्झं विवज्जए ॥[1]

(५) ब्रह्मचारी न तो स्त्रियोका कूजना सुने न रोना; न गाना सुने न हँसना; न सीत्कार करना सुने, न क्रंदन करना ।

हासं किड्डं रइं दप्पं सहसा वित्तासियाणि य ।
बम्भचेररओ थीणं नानुचिन्ते कयाइ वि ॥[2]

(६) ब्रह्मचारीने पिछले जीवनमे स्त्रियोंके साथ जो भोग भोगे हो, जो हँसी-मसखरी की हो, ताश-चौपड खेली हो, उनके शरीरका स्पर्श किया हो, उनके मानमर्दनके लिए गर्व किया हो, उनके साथ जो विनोद आदि किया हो, उसका मनमे विचार-तक न करे ।

पणीयं भत्तपाणं तु खिप्पं मयविवड्ढणं ।
बम्भचेररओ भिक्खू निच्चसो परिवज्जए ॥[3]

(७) ब्रह्मचारीको रसीली चिकनी चीजो—घी, दूध, दही, तेल, गुड, मिठाई आदिको सदाके लिए छोड देना चाहिए । ऐसे भोजनसे विषयवासनाको शीघ्र उत्तेजना मिलती है ।

रसा पगामं न निसेवियव्वा पायं रसा दित्तिकरा नराणं ।
दित्तं च कामा समभिद्दवन्ति, दुमं जहा साउफलं व पक्खी ॥[4]

ब्रह्मचारीको दूध, दही, घी आदि चिकने, खट्टे, मीठे, चरपरे आदि रसोवाले स्वादिष्ट पदार्थोंका सेवन नही करना

---

१. उत्तरा० १६।५ । २. वही, १६।६ । ३. वही, १६।७ । ४. वही, ३२।१० ।

अगधन कुलमे पैदा हुए सर्प जगमगाती आगमें जलकर मरना पसन्द करते है। पर एक बार जिस विषकी कय कर देते हैं, उसे फिरसे पीना पसन्द नहीं करते।

धिरत्थु तेऽजसोकामी जो त जीवियकारणा।
वंत इच्छसि आवेउं, सेय ते मरण भवे ॥[1]

हे कामी। तू कय की हुई चीजको पीनेकी इच्छा करता है। इससे तो तेरा मर जाना अच्छा।

जइ त काहिसी भावं जा जा दिच्छसि नारिओ।
वायाविद्धो व्व हडो अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥[2]

जिन-जिन स्त्रियोको तू देखे, उन सबको यदि तू भोगनेकी इच्छा करेगा तो हवासे कांपनेवाले जड वृक्षकी तरह तू अस्थिर बन जायगा और अपने चित्तकी समाधिको खो बैठेगा।

राजीमतीने रथनेमिको इस तरह समझाते हुए कहा :

इदियाइं वसे काउं अप्पाणं उवसंहरे।[3]

अपनी इन्द्रियोको वशमे कर। अपनी आत्माको जीत। विषयोको छोड़। तभी तू सुखी होगा।

रथनेमिपर राजीमतीके शब्दोका बडा असर हुआ। पवित्र उपदेशके शीतल जलसे उसकी वासना शान्त हो गयी। जैसे अंकुशसे हाथी रास्तेपर आ जाता है, उसी तरह उसका मन स्थिर हो गया।

---

१. उत्तरा० २२।४३। २. वही, २२।४५। ३. वही, २२।४०।

कूइयं रुइयं गीयं हसियं थणियकन्दियं।
बम्भचेररओ थीणं सोयगेज्झं विवज्जए ॥[1]

(५) ब्रह्मचारी न तो स्त्रियोका कूजना सुने न रोना; न गाना सुने न हँसना, न सीत्कार करना सुने, न क्रंदन करना।

हासं किड्डं रइं दप्पं सहसा वित्तासियाणि य।
बम्भचेररओ थीणं नानुचिन्ते कयाइ वि ॥[2]

(६) ब्रह्मचारीने पिछले जीवनमे स्त्रियोके साथ जो भोग भोगे हो, जो हँसी-मसखरी की हो, ताश-चौपड खेली हो, उनके शरीरका स्पर्श किया हो, उनके मानमर्दनके लिए गर्व किया हो, उनके साथ जो विनोद आदि किया हो, उसका मनमे विचार-तक न करे।

पणीयं भत्तपाणं तु खिप्पं मयविवड्ढणं।
बम्भचेररओ भिक्खू निच्चसो परिवज्जए ॥[3]

(७) ब्रह्मचारीको रसीली चिकनी चीजों—घी, दूध, दही, तेल, गुड, मिठाई आदिको सदाके लिए छोड देना चाहिए। ऐसे भोजनसे विषयवासनाको शीघ्र उत्तेजना मिलती है।

रसा पगामं न निसेवियव्वा पायं रसा दित्तिकरा नराणं।
दित्तं च कामा समभिद्दवन्ति, दुमं जहा साउफलं व पक्खी ॥[4]

ब्रह्मचारीको दूध, दही, घी आदि चिकने, खट्टे, मीठे, चरपरे आदि रसोवाले स्वादिष्ट पदार्थोंका सेवन नही करना

१. उत्तरा० १६।५। २. वही, १६।६। ३. वही, १६।७। ४. वही, ३२।१०।

चाहिए। इनसे वीर्यकी वृद्धि होती है, उत्तेजना होती है। जैसे दलके दल पक्षी स्वादिष्ट फलोवाले वृक्षकी ओर दौडते जाते हैं, उसी तरह वीर्यवाले पुरुषको कामवासना सताने लगती है।

धम्मलद्धं मियं काले जत्तत्थं पणिहाणवं।
नाइमत्त तु भुंजेज्जा बम्भचेररओ सया॥[1]

(८) ब्रह्मचारीको वही भोजन करना चाहिए, जो धर्मसे मिला हो। उसे परिमित भोजन करना चाहिए। समयपर करना चाहिए। संयमके निर्वाहके लिए जितना जरूरी हो, उतना ही करना चाहिए। न कम, न ज्यादा।

विभूसं परिवज्जेज्जा सरीरपरिमण्डणं।
बम्भचेररओ भिक्खू सिंगारत्थं न धारए॥[2]

(९) ब्रह्मचारीको शरीरके शृंगारके लिए न तो गहने पहनने चाहिए और न शोभा या सजावटके लिए और कोई काम करना चाहिए।

सद्दे रूवे य गंधे य रसे फासे तहेव य।
पंचविहे कामगुणे निच्चसो परिवज्जए॥[3]

(१०) ब्रह्मचारीको शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श—इन पाँच तरहके कामगुणोको सदाके लिए छोड़ देना चाहिए। जो शब्द, जो रूप, जो गंध, जो रस और जो स्पर्श मनमे कामवासना भड़काते है, उन्हे बिलकुल त्याग दे।

---

१. उत्तरा० १६।८। २. वही, १६।९। ३. वही, १६।१०।

जलकुंभे जहा उवज्जोई संवासं विदू विसीएज्जा ॥[२]

आगके पास रहनेसे जैसे लाखका घडा पिघल जाता है, वैसे ही स्त्रीके सहवाससे विद्वान्का मन भी विचलित हो जाता है ।

परिग्रहका त्याग करो : १० :

चित्तमंतमचित्तं वा परिगिज्झ किसामवि ।
अन्नं वा अणुजाणाइ एवं दुक्खाण मुच्चइ ॥[२]

जो आदमी खुद सजीव या निर्जीव चीजोका संग्रह करता है, दूसरोसे ऐसा संग्रह कराता है या दूसरोको ऐसा सग्रह करनेकी सम्मति देता है, उसका दु:खसे कभी भी छुटकारा नही हो सकता ।

---

१. सूत्रकृत० १।४।१।२६। २. वही, १।१।१।२।

सव्वत्थुवहिणा बुद्धा संरक्खणपरिग्गहे ।
अवि अप्पणो वि देहम्मि नाऽऽयरति ममाइयं ॥[१]

ज्ञानी लोग कपडा, पात्र आदि किसी भी चीजमें ममता नही रखते । यहाँतक कि शरीरमे भी नही ।

धणधन्नपेसवग्गेसु परिग्गह विवज्जणं ।
सव्वारंभ-परिच्चाओ निम्ममत्तं सुदुक्करं ॥[२]

धन-धान्य, नौकर-चाकर आदिके परिग्रहका त्याग करना चाहिए । सभी प्रकारकी प्रवृत्तियोको छोडना और ममतासे रहित होकर रहना बडा कठिन है ।

दो मासा सोना

जहा लाहो तहा लोहो लाहा लोहो पवड्ढई ।
दोमासकयं कज्जं कोडीए वि न निट्ठियं ॥[३]

ज्यो-ज्यो लाभ होता है, त्यो-त्यो लोभ भी बढता है । 'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई !' पहले केवल दो मासा सोनेकी जरूरत थी, बादमे वह बढते-बढते करोड़ोतक पहुँच गयी, फिर भी पूरी न पडी ।

कोसाबीमे कपिल नामका एक ब्राह्मण था । पिता उसका राजपुरोहित था । वह मर गया तो बेटेके अपढ होनेसे राजाने दूसरे ब्राह्मणको राजपुरोहित बना दिया ।

इस बातसे कपिलकी माँ बड़ी दु:खी हुई । यह देख कपिलने पढनेकी इच्छा प्रकट की । वह श्रावस्तीमे अपने पिताके एक

---

१. दशवै० ६।२१ । २. उत्तरा० १९।२९ । ३. वही, ८।१७ ।

मित्रके पास पढने गया। शालिभद्र नामके सेठके यहाँ उसके भोजनका प्रबन्ध हो गया।

शालिभद्रकी एक दासी थी। वह रोज उसे खाना परोसती और खिलाती थी। धीरे-धीरे उस दासीसे कपिलका प्रेम हो गया।

एक दिन दासीने कपिलसे कहा : "इस प्रेमको स्थिर रखना चाहते हो तो धन पैदा करो।"

पर निरक्षर कपिल कहाँसे धन पैदा करे ? एक दिन कोई उत्सव था। दासीने कपिलसे कहा . "सब सखियाँ नये-नये गहने-कपडे पहन रही हैं, पर मेरे पास कुछ नही। तुम यहाँके राजाके पास क्यो नही चले जाते ? वह रोज सबेरे दो मासा सोना उस याचकको देता है, जो सबसे पहले उसके पास पहुँचता है।"

कपिलको बात जँच गयी। जल्दी उठनेकी चितामे वह रातभर सो नही सका। आधी रातको ही वह उठकर चल पडा। समझा कि सबेरा हो गया।

राजाके चौकीदारने उसे चोर समझकर गिरफ्तार कर लिया और सबेरे राजाके सामने पेश किया।

वेचारे कपिलने आदिसे अंततक अपनी कहानी कह सुनायी।

राजाको उसकी बातोपर विश्वास जम गया। बोला : "हे ब्राह्मण देवता! तुम जो चाहे सो माँग लो। तुम जो माँगोगे सो मैं दूँगा।"

राजासे कितना सोना माँगा जाय, यह सोचनेके लिए वह राजाके बगीचेमें चला गया ।

दो मासेसे क्या होगा, चार मासा माँगूँ ? पर चार मासेसे क्या होगा ? दस माँगूँ, सौ माँगूँ, हजार माँगूँ ?

हजार मासेसे भी क्या होगा ? लाख माँगूँ ? करोड माँगूँ ? पर करोड़से भी क्या मेरी संतुष्टि हो जायगी ?

तब राजाका पूरा राज्य ही क्यो न माँग लूँ ?

कपिलने देखा कि यह तृष्णा तो कभी शान्त होनेवाली नही । चाहे करोड़ मासा सोना मिल जाय तब भी ! चाहे पूरा राज्य मिल जाय तब भी । लोभका, तृष्णाका कही पार नही है ।

छि. छि., मैं भी कितना मूर्ख हूँ । मुझे कुछ न चाहिए । मै अब सब कुछ छोडकर अपरिग्रही बनूंगा ।

राजाके पास जाकर कपिलने कह दिया . "महाराज, तृष्णा-का कोई अंत नही । आप मुझे दो मासा सोना दे चाहे करोड मासा, अपना राज्य ही क्यों न दे दे, तृष्णा कभी शान्त होने-वाली नही । मैं इस तृष्णाको ही छोडूंगा। मुझे कुछ न चाहिए ।"

प्रमाद मत करो : ११ :

खिप्पं न सक्केइ विवेगमेउं तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे ।
समिच्च लोयं समया महेसी आयाणुरक्खी चरमप्पमत्ते ॥[1]

विवेक जल्दी ही नही मिलता । उसके लिए भारी साधना करनी पडेगी । साधकको कामभोग छोडकर समभावसे संसारकी असलियतको समझकर आत्माको पापोसे बचाना चाहिए और बिना प्रमादके सदा विचरना चाहिए ।

इह इत्तरियम्मि आउए जीवियए बहु पच्चवायए ।
विहुणाहि रयं पुरेकडं समयं गोयम ! मा पमायए ॥[2]

आयु थोड़ी है । बाधा-विघ्न बहुत हैं । पिछले संचित कर्मोकी धूलको तू झटक दे । हे गौतम ! पलभरका भी प्रमाद मत कर ।

अवले जह भारवाहए मा मग्गे विसमेऽवगाहिया ।
पच्छा पच्छाणुतावए समयं गोयम ! मा पमायए ॥[3]

---

१. उत्तरा० ४।१० । २. वही, १०।३ । ३. वही, १०।३३ ।

घुमावदार विषम मार्गको छोड़। सीधे सरल मार्गपर चल। जो कमजोर भारवाहक विषम मार्गपर चलता है, उसे पछताना पडता है। वैसा पछतावा तुझे न करना पडे, इसका ध्यान रख। हे गौतम ! प्रमाद मत कर।

सच्चा ब्राह्मण : साधु और भिक्षु : १२ :

जयघोष नामका एक ब्राह्मण था। संसारसे उसे वैराग्य हो गया। वह मुनि बन गया।

एक बार वह घूमते-घूमते काशी पहुँचा।

यहाँ उन दिनो विजयघोष नामका ब्राह्मण यज्ञ कर रहा था। जयघोष उसके यहाँ भिक्षाको गया तो वह बोला : "ऐ भिक्षु ! मै तुझे भिक्षा नही देता। मैं तो उसी ब्राह्मणको भिक्षा दूँगा, जो वेदका ज्ञाता हो, यज्ञको समझता हो, ज्योतिष-शास्त्रमे प्रवीण हो और धर्मको जानता हो।"

जयघोषने पूछा : "अच्छा ब्राह्मण देवता, जरा यह तो बताओ कि सच्चा ब्राह्मण कौन है ? अपना और दूसरेका उद्धार करनेमे कौन समर्थ है ? वेदका, यज्ञका, धर्मका मुख क्या है ? उसका मूल तत्त्व क्या है ?"

विजयघोषके पास इसका उत्तर न था। उसने और दूसरे ब्राह्मणोने जयघोषसे प्रार्थना की कि "महाराज, हम तो नही जानते, आप ही बताइये।"

जयघोषने उन्हे इसका रहस्य समझाते हुए कहा :

तसपाणे वियाणेत्ता संगहेण य थावरे।
जो न हिंसइ तिविहेण तं वयं बूम माहणं॥[१]

जो इस बातको जानता है कि कौन प्राणी त्रस है, कौन स्थावर है और मन, वचन और कायासे किसी भी जीवकी हिंसा नही करता, उसीको हम ब्राह्मण कहते हैं।

कोहा वा जइ वा हासा लोहा वा जइ वा भया।
मुस न वयई जो उ तं वयं बूम माहणं॥[२]

जो न तो गुस्सेमे आकर झूठ बोलता है, न हँसी-मजाकमे पडकर, न लोभमे आकर झूठ बोलता है, न भयमे पड़कर; उसीको हम ब्राह्मण कहते हैं।

न वि मुंडिएण समणो न ओंकारेण बंभणो।
न मुणी रण्णवासेणं कुसचीरेण न तावसो॥[३]

---

१. उत्तरा० २५।२३। २. वही, २५।२४। ३ वही, २५।३१।

सिर मुंडा लेनेसे ही कोई श्रमण नही वन जाता। ओंकारका जप कर लेनेसे ही कोई ब्राह्मण नही वन जाता। केवल जंगलमे जाकर वस जानेसे ही कोई मुनि नही वन जाता। वल्कल वस्त्र पहन लेनेसे ही कोई तपस्वी नही वन जाता।

समयाए समणो होइ वभचेरेण वभणो।
नाणेण उ मुणी होइ तवेण होइ तावसो ॥[१]

समता पालनेसे श्रमण वनता है। ब्रह्मचर्य पालनेसे ब्राह्मण। चिन्तन-मननसे, ज्ञानसे मुनि बनता है। तपस्या करनेसे तपस्वी !

सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकंपी खंतिक्खमे संजयबंभयारी।
सावज्जजोगं परिवज्जयंतो चरेज्ज भिक्खू सुसमाहिइन्दिए ॥[२]

भिक्षु सव प्राणियोपर दया करे। कठोर वचनोको सहन करे। सयमी रहे। ब्रह्मचारी रहे। इन्द्रियोको वशमें रखे। पापोसे वचता हुआ विचरे।

---

१. उत्तरा० २५।३२। २. वही, २१।१३।

खामेमि सव्वे जीवे सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झं न केणइ ॥[१]

मैं सब जीवोसे क्षमा चाहता हूं । मैं भी सब जीवोंको क्षमा करता हूं । सब जीवोंके प्रति मेरा मैत्रीभाव है । मेरा किसीसे वैर नही है ।

सव्वस्स जीवरासिस्स भावओ धम्मनिहिअनिअचित्तो ।
सव्वे खमावइत्ता खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥[२]

मै सच्चे हृदयसे धर्ममे स्थिर हुआ हूं । सब जीवोसे मैं सारे अपराधोंकी क्षमा माँगता हूॅ । सब जीवोने मेरे प्रति जो अपराध किये हैं, उन्हे मै क्षमा करता हूं ।

जं जं मणेण बद्धं जं जं वायाए भासियं पावं ।
जं जं कायेण कयं मिच्छा मि दुक्कडं तस्स ॥[3]

मैंने अपने मनमे जिन-जिन पापकी वृत्तियोका संकल्प किया हो, वचनसे जो-जो पापवृत्तियाँ प्रकट की हो और शरीरसे जो-जो पापवृत्तियाँ की हो, मेरी वे सभी पापवृत्तियाँ विफल हो । मेरे पाप मिथ्या हो ।

---

१. पचप्रति० वदित्तु सू० गा० ४६ । २. वही, आयरिअ० ३ । ३. वही, सथारा० अन्तिम ।

: ४ :

तत्त्वार्थसूत्र में कहा है

उमास्वातिका रचा हुआ 'तत्त्वार्थसूत्र' सभी सम्प्रदायोमे मान्य जैन धर्मका प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसमे जैन दर्शन, आचार और सिद्धान्तोका सागोपाग परिचय सूत्ररूपमे आ गया है। इसपर अनेक भाष्य और टीकाएँ उपलब्ध हैं। भगवद्गीताकी तरह घर-घरमे इसका पाठ होता है।

मनुष्य-जीवनका अन्तिम उद्देश्य है, मोक्ष प्राप्त करना। यह मोक्ष किस प्रकार मिले, उसके पानेके कौन-कौनसे उपाय हैं, इसीका इस ग्रन्थमे सूत्ररूपमे वर्णन है।

तत्त्वार्थसूत्र दस अध्यायोमें बँटा है। पहले अध्यायमे ज्ञान-की मीमासा है। दूसरे अध्यायसे पाँचवे अध्यायतक ज्ञेयकी मीमासा है। छठेसे दसवें अध्यायतक चारित्रकी।

तत्त्वार्थसूत्र मनुष्यमात्रके लिए उपयोगी है। आइये, हम इसकी हलकी-सी झाँकी करे।

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयम-
तपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ।[१]

उत्तम धर्मके दस अंग हैं :

१. क्षमा : सहनशीलता। क्रोधको पैदा न होने देना। क्रोध पैदा हो ही जाय तो अपने विवेकसे, नम्रतासे उसे विफल कर देना। अपने भीतर क्रोधका कारण ढूँढना, क्रोधसे होनेवाले अनर्थों-को सोचना, दूसरोकी बेसमझीका खयाल न करना। क्षमाके गुणों-का चिन्तन करना।

२ मार्दव : चित्तमे मृदुताका होना, व्यवहारमे नम्रताका।

३ आर्जव : भावकी शुद्धता। जो सोचना सो कहना। जो कहना, सो करना।

४. शौच : मनमे किसी भी तरहका लोभ न रखना। आसक्ति न रखना। शरीरकी भी नही।

५ सत्य : यथार्थ बोलना। हितकारी बोलना। थोडा बोलना।

६ संयम : मन, वचन और शरीरको काबूमें रखना।

७. तप : मलिन वृत्तियोको दूर करनेके लिए जो बल चाहिए, उसके लिए तपस्या करना।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र ९।६।

८. त्याग : पात्रको ज्ञान, अभय, आहार, औषधि आदि सद्वस्तु देना।

९. अकिंचनता : किसी भी चीजमे ममता न रखना। अपरिगह स्वीकारना।

१० ब्रह्मचर्य . सद्गुणोका अभ्यास और अपनेको पवित्र रखना।

मोक्षके साधन : २ :

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥[१]

मोक्षके ३ साधन हैं :

१. सम्यक्दर्शन : जिस गुणके विकाससे सत्यकी प्रतीति हो, या जिससे आत्मस्वरूपके प्रति श्रद्धा और अभिरुचि हो, उसका नाम है, सम्यक्दर्शन।

२. सम्यक्ज्ञान : नय और प्रमाणसे जीव आदि तत्त्वोका सम्यक्दर्शन पूर्वक जो ज्ञान होता है, उसका नाम है सम्यक्ज्ञान।

३. सम्यक्चारित्र : सम्यक्ज्ञानपूर्वक जो चारित्र धारण किया जाता है, उसका नाम है सम्यक्चारित्र। आत्मस्वरूपमे स्थिर होना सम्यक्चारित्र है। इसमे हिंसा आदि दोषोका त्याग किया जाता है और अहिंसा आदि साधनोका अनुष्ठान किया जाता है।

कृत्स्न कर्मक्षयो मोक्षः।[२]

सभी कर्मोंके क्षय होनेका नाम है, मोक्ष।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र १।१ । २. वही, १०।३

पंच महाव्रत

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ।[१]

हिंसासे, असत्यसे, चोरीसे, कुशीलसे और परिग्रहसे विरत होनेका नाम है, व्रत ।

देशसर्वतोऽणुमहती ।[२]

थोड़े अंशमे इनसे विरत होना है, अणुव्रत । सर्वांशमे इनसे विरत होना है, महाव्रत । गृहस्थ अणुव्रती होते हैं, मुनि महाव्रती ।

व्रतोंके अतिचार

व्रतशीलेषु पंच पंच यथाक्रमम् ।[३]

व्रतो और शीलोके पाँच-पाँच अतिचार हैं ।

वन्धवधच्छविच्छेदाऽतिभारारोपणाऽन्नपाननिरोधाः ।[४]

अहिंसाव्रतके अतिचार हैं :

वन्ध : किसी भी प्राणीको उसके इष्टस्थानको जानेसे रोकना या बाँधना ।

वध : डंडा या चाबुक आदिसे प्रहार करना ।

छविच्छेद : कान, नाक, चमड़ी आदिको छेदना ।

अतिभारका आरोपण : मनुष्य या पशु आदिपर उसकी शक्तिसे अधिक बोझ लादना ।

अन्नपानका निरोध : किसीके खान-पानमे रुकावट डालना ।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र ७।१ । २. वही, ७।२ । ३. वही, ७।१९ । ४. वही, ७।२० ।

मिथ्योपदेशरहस्याभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहार-साकारमन्त्रभेदाः ।[१]

सत्यव्रतके अतिचार हैं :

मिथ्योपदेश : सच्ची-झूठी बाते कहकर किसीको गलत रास्तेपर डाल देना ।

रहस्याभ्याख्यान : विनोदके लिए पति-पत्नीको या स्नेहियो-को एक-दूसरेसे अलग कर देना । किसीके सामने दूसरेपर दोष लगाना ।

कूटलेखक्रिया : मुहर, हस्ताक्षर आदिके द्वारा झूठी लिखा-पढी करना । खोटे सिक्के चलाना ।

न्यासापहार : कोई धरोहर रखकर भूल जाय तो उसे पूरा या अधूरा हडप जाना ।

साकारमन्त्रभेद : आपसकी प्रीति तोड़नेके लिए दूसरेकी चुगली खाना । किसीकी गुप्त बात प्रकट कर देना ।

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानो-न्मानप्रतिरूपक व्यवहाराः ।[२]

अस्तेयव्रतके अतिचार हैं :

स्तेनप्रयोग : किसीको चोरीके लिए उकसाना, दूसरे आदमीके द्वारा उकसाना । चोरीके काममे सम्मति देना ।

स्तेन-आहृतादान : निजी प्रेरणाके बिना, निजी सम्मतिके बिना चोरीके मालको ले लेना ।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र ७।२१ । २. वही, ७।२२ ।

विरुद्ध राज्यका अतिक्रम : राज्योके आयात-निर्यातके नियमोका, चीजोपर लगी उनकी कर-व्यवस्थाके नियमोका उल्लंघन करना ।

हीनाधिक मानोन्मान : नाप, बाँट, तराजूमे कमी-बेशी करके पूरा माल न देना ।

प्रतिरूपक व्यवहार : असलीके बदले नकली या बनावटी माल बेचना ।

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः ।[1]

अपरिग्रहव्रतके अतिचार हैं :

क्षेत्र और वास्तुके परिमाणका अतिक्रम : क्षेत्र माने खेती लायक जमीन । वास्तु माने रहने लायक मकान आदि । दोनोका जो परिमाण सोचा हो, लोभमे आकर उस सीमाको पार कर जाना ।

हिरण्य और सुवर्णके परिमाणका अतिक्रम : सोने-चाँदीके परिमाणका व्रत लेते समय उसकी जो सीमा बनायी हो, उसे पार कर जाना ।

धन-धान्यके परिमाणका अतिक्रम : गाय, भैंस आदि धन और धान्य रखनेका व्रत लेते समय जो सीमा बाँधी हो, उसे पार कर जाना ।

दासी-दासके परिमाणका अतिक्रम : दासी-दासकी संख्या आदिके लिए व्रतके समय जो मर्यादा रखी हो, उसे पार कर जाना ।

कुप्यके परिमाणका अतिक्रम : कपड़ो, बर्तनो आदिके लिए व्रतके समय जो सीमा रखी हो, उसे पार कर जाना ।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र ७।२४ ।

दान-धर्मके चार अंग : ४ :

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ।[1]

अनुग्रहके लिए अपनी वस्तुके त्याग करनेका नाम है दान ।

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ।[2]

विधि, देयवस्तु, दाता और ग्राहककी विशेषतासे दानकी विशेषता है ।

दानका मतलब है, अपने पसीनेकी कमाई दूसरेको प्रेमपूर्वक अर्पण करना ।

दानके फलमे तरतमके भावसे विशेपता होती है । उसके चार अग हैं .

विधिकी विशेषता : देश, कालका ओचित्य रहे और लेनेवालेके सिद्धान्तमे कोई बाधा न आये, यह है विधिकी विशेषता ।

द्रव्यकी विशेषता : दानकी वस्तु लेनेवालेके लिए उपकारी और हितकर हो, यह है द्रव्यकी विशेषता ।

दाताकी विशेषता : दातामे दान लेनेवालेके प्रति श्रद्धा और प्रेम हो, प्रसन्नता हो, यह है दाताकी विशेषता ।

पात्रकी विशेषता : दान लेनेवाला सत्पुरुषार्थके लिए जागरूक हो, यह है पात्रकी विशेपता ।

ऐसे दानसे दाताका भी कल्याण होता है, आदाताका भी ।

●

---

१. तत्त्वार्थसूत्र ७।३३ या ३८ । २. वही, ७।३४ या ३९ ।

आचार्योंने कहा है

वही आत्मा : वही परमात्मा : १ :

सदाशिवः परब्रह्म सिद्धात्मा तथतेति च ।
शब्दैस्तदुच्यतेऽन्वर्थादेकमेवैवमादिभिः ॥[1]

सदाशिव, परब्रह्म, सिद्ध, आत्मा, तथागत आदि शब्दो द्वारा उस एक ही परमात्माका नाम लिया जाता है । शब्द-भेद होनेपर भी अर्थकी दृष्टिसे वह एक ही है ।

सर्वान्देवान्नमस्यन्ति नैकं देवं समाश्रिताः ।
जितेन्द्रिया जितक्रोधा दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥[2]

इंद्रियो तथा क्रोधपर विजय प्राप्त करनेवाले जो गृहस्थ किसी एक देवको आश्रित न कर सब देवोको आदरपूर्वक नमस्कार करते हैं, वे संसाररूपी दुर्गोंको पार कर जाते है ।

---

१ हरिभद्र : योगदृष्टि समुच्चय २८ । २ हरिभद्र . योगबिन्दु ११८ ।

णिद्दंडो णिद्द्वंद्वो णिम्ममो णिक्कलो णिरालंबो।
णीरागो णिद्दोसो णिम्मूढो णिव्भयो अप्पा ॥[1]

जो मन, वचन और कायाके दण्डोसे रहित है, हर तरहके द्वद्वसे, संघर्षसे मुक्त है, जिसे किसी चीजकी ममता नही, जो शरीररहित है, जो किसीके सहारे नही रहता है, जिसमे किसीके प्रति राग नही है, द्वेप नही है, जिसमे मूढता नही है, भय नही है, वही है—मुक्त आत्मा।

णवि दुक्खं णवि सुक्खं णवि पीडा णेव विज्जदे वाहा।
णवि मरणं णवि जणणं तत्थेव य होइ णिव्वाण ॥[2]

जहाँ दुःख नही है, सुख (इन्द्रिय-सुख) नही है, पीडा नही है, बाधा नही है, मरण नही है, जन्म नही है, वही निर्वाण है।

णवि इंदियउवसग्गा णवि मोहो विम्हियो ण णिद्दा य।
ण य तिण्हा णेव छुहा तत्थेव य होइ णिव्वाणं ॥[3]

जहॉ इन्द्रियां नही हैं, उपसर्ग नही है, मोह नही है, आश्चर्य नही है, निद्रा नही है, प्यास नही है, भूख नही है, वही निर्वाण है।

---

१. कुंदकुंद : नियमसार ४३। २ वही, १७९। ३ वही, १८०।

सीलं तवो विसुद्धं दंसणसुद्धीय णाणसुद्धीय ।
सीलं विसयाण अरी सीलं मोक्खस्स सोवाणं ॥[1]

शील ही विशुद्ध तप है। शील ही दर्शन-विशुद्धि है। शील ही ज्ञान-शुद्धि है। शील ही विषयोका शत्रु है। शील ही मोक्षकी सीढी है।

जीवदया दम सच्चं अचोरियं बंभचेरसंतोसे ।
समद्दंसणणाणे तओ य सीलस्स परिवारो ॥[2]

जीवोपर दया करना, इन्द्रियोको वशमे करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्यका पालन करना, संतोष धारण करना, सम्यक् दर्शन, ज्ञान और तप—ये सब शीलके परिवार हैं।

सीयल मोटो सर्व वरत मे, ते भाष्यो छै श्री भगवंत रे।
ज्यां समकित सहीत वरत पालीयो, त्यां कीयो संसारनो अंत रे ॥[3]

जिनेश्वर भगवान्ने कहा है कि शील सबसे बडा व्रत है। जिन्होने सम्यक्त्वके साथ शील व्रतको पाला, उन्होने संसारका अत कर डाला।

---

१. कुंदकुद : शील पाहुड २० । २. वही, १९ । ३. भीखण : शीलकी नव वाड़, ढाल १।२ ।

णिद्दंडो णिद्द्वंद्वो णिम्ममो णिक्कलो णिरालंबो।
णीरागो णिद्दोसो णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा ॥[1]

जो मन, वचन और कायाके दण्डोसे रहित है, हर तरहके द्वंद्वसे, संघर्षसे मुक्त है, जिसे किसी चीजकी ममता नही, जो शरीररहित है, जो किसीके सहारे नही रहता है, जिसमे किसीके प्रति राग नही है, द्वेष नही है, जिसमे मूढता नही है, भय नही है, वही है—मुक्त आत्मा।

णवि दुक्खं णवि सुक्खं णवि पीडा णेव विज्जदे बाहा।
णवि मरणं णवि जणणं तत्थेव य होइ णिव्वाण ॥[2]

जहाँ दुःख नही है, सुख (इन्द्रिय-सुख) नही है, पीडा नही है, बाधा नही है, मरण नही है, जन्म नही है, वही निर्वाण है।

णवि इंदियउवसग्गा णवि मोहो विम्हियो ण णिद्दा य।
ण य तिण्हा णेव छुहा तत्थेव य होइ णिव्वाणं ॥[3]

जहाँ इन्द्रियाँ नही हैं, उपसर्ग नही है, मोह नही है, आश्चर्य नही है, निद्रा नही है, प्यास नही है, भूख नही है, वही निर्वाण है।

---

१. कुंदकुंद : नियमसार ४३। २ वही, १७९। ३. वही, १८०।

सीलं तवो विसुद्धं दंसणसुद्धीय णाणसुद्धीय ।
सीलं विसयाण अरी सीलं मोक्खस्स सोवाणं ॥[1]

शील ही विशुद्ध तप है। शील ही दर्शन-विशुद्धि है। शील ही ज्ञान-शुद्धि है। शील ही विषयोका शत्रु है। शील ही मोक्षकी सीढी है।

जीवदया दम सच्चं अचोरियं बंभचेरसंतोसे ।
सम्मद्दंसणणाणे तओ य सीलस्स परिवारो ॥[2]

जीवोपर दया करना, इन्द्रियोको वशमे करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्यका पालन करना, संतोष धारण करना, सम्यक् दर्शन, ज्ञान और तप—ये सब शीलके परिवार हैं।

सीयल मोटो सर्व वरत मे, ते भाष्यो छै श्री भगवंत रे।
ज्यां समकित सहीत वरत पालीयो, त्यां कीयो संसारनो अंत रे ॥[3]

जिनेश्वर भगवान्‌ने कहा है कि शील सबसे बडा व्रत है। जिन्होने सम्यक्त्वके साथ शील व्रतको पाला, उन्होने संसारका अंत कर डाला।

---

१. कुदकुद : शील पाहुड २० । २. वही, १९ । ३. भीखण : शीलकी नव बाड़, ढाल १।२ ।

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणु व्रतपंचकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणा श्रमणोत्तमाः ।।[१]

श्रावकके आठ मूल गुण हैं :

१. मद्यका, शराबका त्याग, २ मांसका त्याग, ३. मधुका त्याग, ४. हिंसाका त्याग, ५ असत्यका त्याग, ६ चोरीका त्याग, ७. कुशीलका, अब्रह्मचर्यका त्याग तथा ८. परिग्रहका त्याग ।

सात व्यसन छोड़ें

जूयं मज्जं मंसं वेसा पारद्धि-चोर-परयारं ।
दुग्गइ गमणस्सेदाणि हेउभूदाणि पावाणि ।।[२]

श्रावकोंको ये ७ व्यसन छोड देने चाहिए : १ जुआ, २. शराब, ३. मास, ४. वेश्या, ५ शिकार, ६ चोरी और ७ परस्त्री सेवन । इन पापोसे दुर्गति होती है ।

जुआ

ण गणेइ इट्ठमित्तं ण गुरुं ण य मायरं पियरं वा ।
जूवंधो वुज्जाइं कुणइ अकज्जाइं वहुयाइं ।।[3]

जुआ खेलनेसे जिस आदमीकी आँखे अंधी हो गयी हैं, वह न इष्टमित्रोको देखता है, न गुरुको । न वह माँका आदर करता है, न पिताका । वह बहुतसे पाप करता है ।

---

१. समन्तभद्र : श्रीरत्न करण्ड श्रावकाचार ६६ । २. वसुनन्दि : श्रावकाचार ५९ । ३. वही, ६३ ।

अक्खेहि णरो रहिओ ण मुणइ सेसिंदएहिं वेएइ।
जूयंधो ण य केण वि जाणइ संपुण्णकरणो वि॥[1]

अंधा आदमी आँखोसे तो नही देख पाता, पर दूसरी इन्द्रियोसे तो देखता है। जुआरीकी तो पाँचो फूट जाती हैं। किसी इन्द्रियसे उसे कुछ नही दीखता।

शराव

मज्जेण णरो अवसो कुणेइ कम्माणि णिंदणिज्जाइं।
इहलोए परलोए अणुहवइ अणंतयं दुक्ख॥[2]

शराबके अधीन होकर मनुष्य तरह-तरहके निदनीय कर्म करता है। उसे इस लोकमे भी अनेक दु ख भोगने पड़ते हैं, परलोकमे भी।

जं किंचि तस्स दव्वं अजाणमाणस्स हिप्पइ परेहिं।
लहिऊण किंचि सण्णं इदो तदो धावइ खलंतो॥[3]

शराबीकी जेबमे जो कुछ रुपये-पैसे होते है, उसे दूसरे लोग ही छीन ले जाते हैं। होशमे आनेपर उन्हे पानेके लिए वह इधर-उधर मारा-मारा फिरा करता है।

मांस

मंसासणेण वड्ढइ दप्पो दप्पेण मज्जमहिलसइ।
जूयं पि रमइ तो तं पि वण्णिए पाउणइ दोसे॥[4]

मास खानेसे दर्प बढता है, उन्माद बढता है। दर्पसे मनुष्य शराब पीना चाहता है। फिर वह जुआ खेलना चाहता है। वह तमाम दोषोमे फँस जाता है।

---

१ वसुनन्दि . श्रावकाचार ६६। २ वही, ७०। ३. वही, ७३। ४ वही, ८६।

वेश्या

रत्तं णाऊण णरं सव्वस्सं हरइ वंचणसएहिं।
काऊण मुयइ पच्छा पुरिसं चम्मट्ठिपरिसेसं ॥[१]

आदमीको अपनेमे आसक्त जानकर वेश्या सैकडो प्रकारसे उसे ठगकर उसका सब कुछ हर लेती है। वह उसे हड्डियोंका ढॉचा बनाकर छोडती है।

शिकार

णिच्चं पलायमाणो तिणचारी तह णिरवराहो वि।
कह णिग्घणो हणिज्जइ आरण्णणिवासिणो वि मए ॥[२]

जो वनवासी हिरन बेचारे डरके मारे सदा इधर-उधर दौडते रहते हैं, तिनके चरते हैं, कोई अपराध नही करते, उन्हे दयाहीन मनुष्य कैसे मारता है ?

चोरी

परदव्वहरणसीलो इह-परलोए असायबहुलाओ।
पाउणइ जायणाओ ण कयावि सुहं पलोएइ ॥[३]

जो आदमी पराया धन चुराता है, उसे इस लोकमे भी दुःख भोगना पड़ता है, परलोकमें भी। उसे सुख कभी नही मिलता।

कुशील

दट्ठूण परकलत्तं णिव्वुद्धी जो करेइ अहिलासं।
ण य किंपि तत्थ पावइ पावं एमेव अज्जेइ ॥[४]

पराई स्त्रीको देखकर जो मूर्ख उसकी इच्छा करता है, उसके पल्ले पाप ही पडता है, और कुछ नही।

---

१. वसुनन्दि-श्रावकाचार ८९। २. वही, ९६। ३. वही, १०१। ४. वही, ११२।

पढिएणवि किं कीरइ किंवा सुणिएण भावरहिएण ।
भावो कारणभूदो सायारणयारभूदाणं ॥[1]

भावसे रहित होकर पढनेसे क्या लाभ ? भावसे रहित होकर सुननेसे क्या लाभ ? चाहे गृहस्थ हो चाहे त्यागी, सभीका कारण भाव ही है ।

बाहिरसंगच्चाओ गिरिसरिकंदराइ आवासो ।
सयलो णाणज्झयणो निरत्थओ भावरहियाणं ॥[2]

जिसमे भावना नही है, ऐसा आदमी धन-धान्य आदि परिग्रहको छोड दे, गुफामे जाकर रहे, नदी-तटपर जाकर रहे तो भी क्या ? उसका ज्ञान, उसका अध्ययन बेकार है ।

भावविसुद्धिणिमित्तं बाहिरगंथस्स कीरए चाओ ।
बाहिरचाओ विहलो अब्भन्तरगंथजुत्तस्स ॥[3]

भावको शुद्ध करनेके लिए बाहरी परिग्रहका त्याग किया जाता है, पर जिसने भीतरसे परिग्रहका त्याग कर रखा है, उसके लिए बाहरी परिग्रह छोडनेका कोई अर्थ नही ।

तुसमासं घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावो य ।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडं जाओ ॥[4]

तुषसे उडदकी दाल अलग है, इसी तरह शरीरसे आत्मा अलग है, ऐसा 'तुषमाष' रटते-रटते शिवभूति नामके भावविशुद्ध महात्माको शास्त्रज्ञान न रहनेपर भी 'केवलज्ञान' प्राप्त हो गया ।

---

१. कुदकुद • भावपाहुड ६६ । २. वही, ८९ । ३. वही, ३ । ४. वही, ५३ ।

णासेदूण कसायं अग्गी णासदि सयं जघा पच्छा।
णासेदूण तध णरं णिरासवो णस्सदे कोधो ॥[1]

जलाने लायक चीजोको जिस तरह आग जलाकर खुद भी नष्ट हो जाती है, उसी तरह क्रोध मनुष्यको नष्ट करके खुद भी नष्ट हो जाता है।

ण गुणे पेच्छदि अववददि गुणे जंपदि अजंपिदव्वं च।
रोसेण रुद्दहिदओ णारयसीलो णरो होदि ॥[2]

क्रोध आनेपर मनुष्य जिस व्यक्तिपर क्रोध करता है, उसके गुणोकी ओर ध्यान नही देता। वह उसके गुणोकी निन्दा करने लगता है। जो न कहना चाहिए सो कह डालता है। क्रोधसे मनुष्यका हृदय रुद्ररूप धारण कर लेता है। वह मनुष्य होकर भी नारकी जैसा बन जाता है।

सुटठु वि पियो मुहुत्तेण होदि वेसो जणस्स कोधेण।
पधिदो वि जसो णस्सदि कुद्धस्स अकज्जकरणेण ॥[3]

क्रोधके कारण मनुष्यका परम प्यारा प्रेमी भी पलभरमे उसका शत्रु बन जाता है। मनुष्यकी प्रसिद्धि भी उसके क्रोधके कारण नष्ट हो जाती है।

---

१. शिवकोटी : भगवती आराधना १३६४। २. वही, १३६६। ३ वही, १३७०।

ममताका त्याग करो : ७ :

अहं ममेति मंत्रोऽयं, मोहस्य जगदान्ध्यकृत् ।
अयमेव हि नयपूर्वः प्रतिमंत्रोऽपि मोहजित् ॥[1]

मैं, मेरा इस मोहरूपी मंत्रने सारे संसारको अंधा बना रखा है, परंतु 'यह मेरा नही है'—यह वाक्य मोहको जीतनेका प्रतिमत्र भी है।

दान देना आवश्यक : ८ :

आहारोसह-सत्थाभयभेओ जं चउव्विहं दाणं ।
तं वुच्चइ दायव्वं णिद्दिट्ठमुवासयज्झयणे ॥[2]

उपासकाध्ययनमे कहा है कि चार प्रकारके दान हैं—भोजन, औषधि, शास्त्र और अभय । ये दान अवश्य देने चाहिए ।

अइबुड्ढ-बाल-मूयंध बहिर-देसंतरीय-रोडाणं ।
जहजोग्गं दायव्वं करुणादाणत्ति भणिऊण ॥[3]

बहुत बूढा हो, बालक हो, गूँगा हो, अंधा हो, बहरा हो, परदेशी हो, दरिद्र हो,—'यह करुणादान है' ऐसा मानकर उसे यथायोग्य दान देना चाहिए ।

उववास-वाहि-परिसम-किलेस-परिपीडयं मुणेऊण ।
पत्थं सरीरजोग्गं भेसजदाणं पि दायव्वं ॥[4]

---

१ यशोविजय : ज्ञानसार मोहाष्टक १ । २ वसुनन्दि : श्रावकाचार २३३ । ३ वही, २३५ । ४. वही, २३६ ।

उपवास, बीमारी, मेहनत और क्लेशसे जो पीड़ित हो, उस आदमीको पथ्य और शरीरके योग्य औषधिदान देना चाहिए।

आगमसत्थाइं लिहाविऊण दिज्जंति जं जहाजोग्गं।
तं जाण सत्थदाणं जिणवयणज्झावणं च तहा ॥[1]

आगम शास्त्रोको लिखाकर योग्य पात्रोको देना और 'जिन'-वचनोको पढानेका प्रबन्ध करना शास्त्रदान है।

जं कीरइ परिरक्खा णिच्चं मरणभयभीरुजीवाणं।
तं जाण अभयदाणं सिहामणि सव्वदाणाणं ॥[2]

मौतसे डरे हुए जीवोंकी रक्षा करना है, अभयदान। यह दान सब दानोका शिरोमणि है।

पढमस्स लोगधम्मे परपीडावज्जणाइ ओहेण।
गुरुदेवातिहिपूयाइ दीणदाणाइअहिगिच्च ॥[3]

धर्मशील गृहस्थोको चाहिए कि वे दूसरे प्राणियोको पीडा न पहुँचाये, गुरु, देव और अतिथियोकी पूजा करे और गरीबोको अधिकसे अधिक दान करे।

न वि मारिअइ न वि चोरिअइ
परदारह संगु निवारिअइ
थोवाह वि थोवं दाअइ,
वसणु दुगु दुगु जाइयइ।[4]

किसीको न मारो, चोरी मत करो, परस्त्रीका सग छोडो और थोडेमेसे भी थोडा दान करो, जिससे दु.ख जल्दी दूर हो।

---

१ वसुनन्दि : श्रावकाचार २३७। २. वही, २३८। ३. हरिभद्र : योगशतक २५। ४. सिद्धसेन दिवाकर।

पात्रे दीनादिवर्गे च दानं विधिवदिष्यते ।
पोष्यवर्गाविरोधेन न विरुद्धं स्वतश्च यत् ॥[1]

अपने आश्रयमे रहनेवाले नौकरो आदिका विरोध न करो। सुपात्र, गरीब, अनाथ आदिको विधिपूर्वक दान दो । दीन और अनाथोके साथ अपने नौकरोको भी दान देना चाहिए ।

सबसे मेरी मैत्री हो : ६ :

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थ्यभावं विपरीतवृत्तौ
सदा ममात्मा विदधातु देव ॥[2]

हे देव, मै चाहता हूँ कि यह मेरी आत्मा सदा प्राणी-मात्रके प्रति मैत्रीका भाव रखे । गुणियोको देखकर मुझे प्रसन्नता हो । दु खियोको देखकर मेरे मनमे करुणा जगे । विपरीत वृत्ति-वालोंके प्रति मेरे मनमे उदासीनता रहे । ●

---

१ हरिभद्र. योगबिन्दु १२१ । २. अमितगति : सामायिक पाठ १ ।
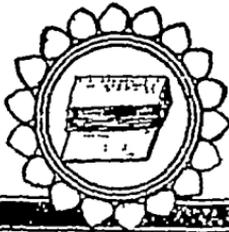
दया धर्मका मूल है : १ :

इष्टो यथात्मनो देहः सर्वेषां प्राणिनां तथा ।
एवं ज्ञात्वा सदा कार्या दया सर्वासुधारिणाम् ॥[१]

मुझे अपना शरीर जैसा प्यारा है, उसी तरह सभी प्राणियो-को अपना-अपना शरीर प्यारा है । ऐसा जानकर सभी प्राणियो-पर दया करनी चाहिए ।

एषैव हि पराकाष्ठा धर्मस्योक्ता जिनाधिपैः ।
दयारहितचित्तानां धर्मः स्वल्पोऽपि नेष्यते ॥[२]

जिनेन्द्रदेवने कहा है कि धर्मकी चरमसीमा है दया । जिन आदमियोमे दया नही है, उनमे रत्तीभर भी धर्म नही है ।

सोऽर्थो धर्मेण यो युक्तो स धर्मो यो दयान्वितः ।
सा दया निर्मला ज्ञेया मांसं यस्यां न भुज्यते ॥[३]

धन वही है, जिसके साथ धर्म है । धर्म वही है, जिसके साथ दया है । मास न खाना ही निर्मल दया है ।

---

१. रविषेण . पद्मपुराण, १४।१८६ । २. वही, १४।१८७ । ३ वही, ३५।१६१ ।

राजा भरत जब दिग्विजय करके लौटे, तो उन्होने सोचा कि दूसरेके उपकारमे मेरी सम्पत्तिका उपयोग कैसे हो ? मैं महामह नामका यज्ञ कर धन वितरण करूँ। मुनि तो हम लोगोसे धन लेते नही, इसलिए हमे गृहस्थोकी पूजा करनी चाहिए, पर योग्य लोगोको चुनकर।

राजा भरतने उत्सवका प्रबंध किया। नागरिकोको निमंत्रण दिया और सदाचारी लोगोकी परीक्षाके लिए घरके आँगनमे हरे-हरे अकुर, फूल और फल खूब भरवा दिये।

जिन लोगोने कोई व्रत नही लिया था, वे बिना सोचे-विचारे राजमदिरमे घुस आये। राजाने उन्हें एक ओर हटा दिया।

कुछ लोग भीतर आये बिना वापस लौटने लगे। राजाने उनसे भीतर आनेका आग्रह किया तो प्रासुक मार्गसे, बिना जीव-वाले मार्गसे होकर राजाके पास पहुँचे। राजाने उनसे पूछा कि आप आँगनसे होकर क्यो नही आये ? तो उन्होने कहा .

प्रवालपत्रपुष्पादेः पर्वणि व्यपरोपणम्।
न कल्पतेऽद्य तज्जानां जन्तूनां नोऽनभिद्रुहाम्॥
सन्त्येवानन्तशो जीवा हरितेष्वङ्कुरादिषु।
निगोता इति सार्वज्ञं देवास्माभिः श्रुतं वचः॥
तस्मान्नास्माभिराक्रान्तमद्यत्वे त्वद्गृहाङ्गणम्।
कृतोपहारमार्द्रार्द्रैः फलपुष्पाङ्कुरादिभिः॥[1]

---

१. जिनसेन महापुराण, ३८।१७ १८।

आज पर्वका दिन है । आज न तो कोपल, न पत्ते और न पुष्प आदिका घात किया जाता है और न उनमे रहनेवाले जीवोका । हे देव, हमने सुना है कि हरे अंकुर आदिमे अनन्त 'निगोदिया' जीव, आँखोसे भी न दीखनेवाले जीव
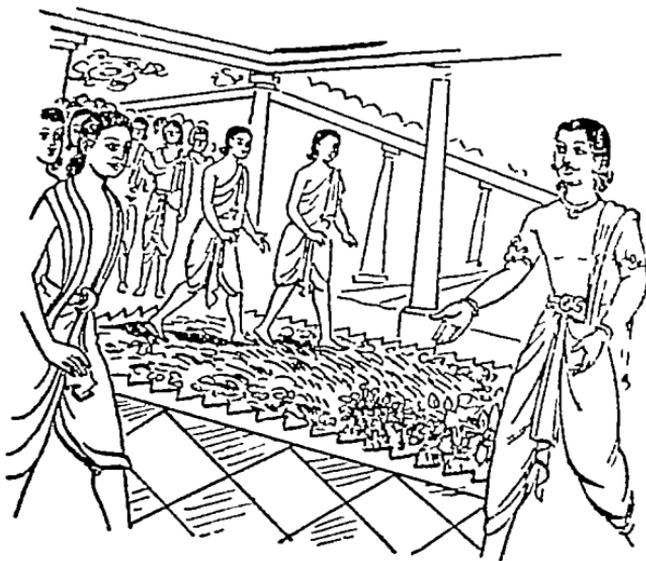
रहते हैं । इसलिए हम आपके ऑगनसे होकर नही आये, क्योकि उसमे शोभाके लिए जो गीले-गीले फल-फूल और अंकुर बिछाये गये हैं, उन्हे हमे रौंदना पडता तथा बहुत-से जीवोकी हत्या होती ।

राजा भरतपर इन वचनोका बहुत असर हुआ । उन्होने इन गृहस्थोको दान, मान आदि सत्कारसे सम्मानित किया ।